Chapter-1

# प्रथम अध्याय :

# गीत-नवगीत की परिभाषा एवं विविध आयाम

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

[stamp]

# प्रथम अध्याय :

# गीत-नवगीत की परिभाषा एवं विविध आयाम

भारतीय वाङ् मय में सर्वत्र साहित्य का प्रारंभ गीत से ही हुआ है अथवा यह कह सकते हैं कि सभ्यता के विकास में साहित्य की स्थापना गीत से ही हुई है 'गीत' मानव समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ा है इसलिए वह लोकभोग्य होते हुए सामान्य जनमानस की रागात्मक संवेदनाओं से जुड़ा है यही कारण है कि भारतीय साहित्य में 'गीत' का प्रारंभिक स्वरूप सामान्यलोक संस्कृति से प्रारंभ होता है। लोक में इन्हे 'संस्कारगीत' कहा गया है संस्कार गीतों को अनेक विद्वानों ने परिभाषित व्याख्यायित एवं विवेचित किया है, यहा अनावश्यक रूप से इस संदर्भ में विश्लेषण अपेक्षित नहीं है।

'गीत' का जन्म मन की रागात्मक संवेदनाओं के आवेग और उद्रेक से होता है जब मनुष्य सामान्य रूप से सुखानुभूति या अन्तर रूढ़ सुखानुभूति से जुड़ता है और जब वह इन उद्भावनाओं के आवेगों को हृदय की रागात्मक झंकृति के साथ व्यक्त करता है तब वह 'गीत' बनता है। रामायण के सर्जक आदि कवि वाल्मीक ने - **''मा निषाद प्रतिष्ठात त्वम...''**[1] कि उक्ति से 'गीत' का प्रारंभ कारुणिक मनोउद्वेगों से माना है। कालांतर में छायावादी कवि पंत ने इसी स्वर में स्वर मिला कर कहा है कि -

**''वियोगी होगा पहला कवि**
**आह से उपजा होगा गान।''**[2]

किन्तु यदि गीतों की समग्रता पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट आभाषित होता है कि 'गीत' केवल कारुणिक प्रवंचना मात्र नहीं है उसमें जीवन के विविध राग और रंग भी समाहित हैं।

कहना अतिश्योक्ति न होगा कि हिन्दी में 'गीति' काव्य का एक लम्बा इतिहास रहा है। यहाँ इसकी विस्तार से चर्चा करना भी आवश्यक नहीं है यह भी सर्वविदित है कि हिन्दी 'गीति' काव्यों का विकास अधिकांशतः हिन्दी की आंचलिक बोलियों से अग्रसर हुआ है इसे हम 'लोकगीत' काव्य के नाम से भी अभिहित कर सकते हैं इन आंचलिक बोलियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक क्षेत्र में प्रभाव स्थापित करने वाली ब्रजभाषा थी जिसने संपूर्ण राष्ट्र को काव्य की एक मात्र मानद् भाषा के रूप में सम्मान अर्जित किया था। इसमें लोकाग्रही आंचलिक परिवेश के गीत तो रहे ही हैं साथ में सांस्कृतिक परिचलन और परम्पराओं के गीत भी समाविष्ट रहे जिनमें षटऋतु, बारहमासा, नख-शिख वर्णन, शिख-नख वर्णन, पर्व और त्यौहारों के वर्षोत्सव, संस्कारगीत, होली, दीवाली, वसन्त आदि के प्रेमोत्सर्गी गीत समाविष्ट हैं। जिन्होंने धीरे-धीरे लोकाभिमुख परिवेश से उठकर अपनी साहित्यिक पहचान भी बनाई है।

इसके साथ ही अवधी, बुन्देली, पूर्वी, मैथिली आदि बोलियों में रचे लोकगीतों ने भी हिन्दी गीतों की पृष्ठभूमि निर्मित की है। मध्यकाल का सम्पूर्ण काव्य इसी लोकसाहित्य से अनुग्रहित हुआ है। भारतेन्दु बाबु हरीशचन्द्र तक हिन्दी गीतों में यह लोक-राग अनन्य भाव से समपृक्त रहा है।

**हिन्दी गीतकाव्य- पृष्ठभूमि**

**वैदिकयुग :-** ऐतिहासिक दृष्टि से गीतकाव्य के उत्स का मूल हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। वैदिक साहित्य में छान्दस अनुशासन का अनुपालन है। यही छान्दस अनुशासन राग और लय को संयमित या संयोजित करता है। वैदिक मंत्रों में यह गेयता तथा लयात्मक प्रबंधन की व्यवस्था है इसीलिए मंत्र गीतात्मक हैं, वैदिक साहित्य की इसी गीतात्मकता एवं रागात्मकता ने साहित्य में गीतितत्व को अग्रसर किया है। यही कारण है कि हम जब भी 'गीतों' के संदर्भ में कोई बात करते हैं तो हमें वैदिक मंत्रों का मुखापेक्षी होना पड़ता है।

वैदिक युगीन ऋषियों ने अपनी अनुभूतियों को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी है, उसमें

जिज्ञासा एवं सहज कौतूहल से युक्त दार्शनिक दृष्टिकोण विशेष रूप से परिलक्षित होता है। प्रकृति के साहचर्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति इन ऋषियों की श्रद्धा, विश्वास तथा भय की भावना ने उद्दीप्त होकर उसकी विभिन्न शक्तियों में देवताओं की मान्यता की।उस युग के मानव अपनी मंगल कामना के लिए अग्नि, वरुण, उषा, सूर्य, चन्द्र आदि के पूजन में अपने हृदय की काव्यपूर्ण सहज राग रसिकता के साथ इनके प्रति समर्पित हो गया.

**'ऋग्वेद'**

**'' 'ऋग्वेद' में स्वाभाविक सा रल्य और प्रासादिकता से युक्त अनेक काव्य-पद-गेय स्तुतियाँ हैं, जिनमें देवी शक्तियों के प्रति जिज्ञासायें उपलब्ध हैं।''**[3]

वैदिककाल में काव्य और संगीत में कोई विभेद नहीं था। यज्ञ के अवसर पर वैदिक ऋचाओं के सस्वर पाठ की प्रथा प्रचलित हुई इन गीत रूप मन्त्रों को 'साम' कहा गया। धीरे-धीरे साम संख्या में वृद्धि होती गयी।

सामवेद में अनेक बातों का उल्लेख मिलता है जैसे दुंदुभी, कंधवीणा, वीणा आदि। सामवेद में स्वरों के निर्मित रूप में स्तोत्र कहे गए हैं। सामवेद गायन पद्धति का शास्त्र नहीं। 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' सस्वर वैदिक स्त्रोत समूह का नाम सामवेद है। समस्त वैदिक ऋचाएँ गेय हैं साथ ही इनमें प्रथम पंक्ति की पुनरावृति की परम्परा भी दिखाई देती है जो आगे चलकर 'टेक' के रूप में हो गई जो गीत संरचना की आधारभूत पहचान है।

**❋ संस्कृत साहित्य :-** संस्कृत साहित्य संसार का प्राचीनतम साहित्य है। इसकी पूर्वपीठीका वैदिक साहित्य में देखी जा सकती है। संस्कृत साहित्य में हमें गीतकाव्य की परम्परा मुक्तकों, स्त्रोतो 'दूत काव्यों' तथा नाटकों के अन्तर्गत तो प्राप्त होती ही है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से भी इसका अस्तित्व हमें दिखाई देता है। संस्कृत साहित्य में अनेक स्तोत्र रचे गये हैं। वैदिक सूत्रों के रूप में कई स्तोत्र मिलते हैं, जो शिव, विष्णु, सूर्य की आराधना के लिये लिखे गये हैं। इसी परम्परा के बाण का 'चण्डीशतक' मयूर का 'सूर्यशतक' पुष्पदन्ताचार्य का 'महिम्नस्तोत्र' जैन मानतुंग का 'भक्ताभीर स्तोत्र' शंकराचार्य की **'सौन्दर्यलहरी'** और पंडित जगन्नाथ की 'गंगालहरी' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। मुक्तक काव्यों में ऋतुसंहार, भर्तृहरिशतक,

अमरुकशतक, आर्यासप्तशती इत्यादि काव्य कृतियाँ प्रमुख हैं जिनमें हम गीतिकाव्य परम्परा को अत्यन्त श्रेष्ठ रूप में विकसित होते हुए देखते हैं। इसी युग में स्वामी शंकराचार्य के नाम से अनेक स्तोत्र साहित्य प्राप्त होते हैं, जिसके अंतर्गत गीति काव्य की सहजता, सरलता और संगीतमयता देखने को मिलती है। **'दूत काव्यों'** में भी गीतिकाव्य के तत्व मिलते हैं जिनके अन्तर्गत विरहणियां मेघ, भौंरे इत्यादि के माध्यम से अपने प्रिय तक संदेश भेजती हैं। **'दूतकाव्य'** वास्तव में 'लोकगीत' अथवा 'विरहा' का ही परिष्कृत रूप है कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' इसी काव्य शैली में रचित है। वेदों के अनन्तर मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में गीतात्मकता दिखाई देती है।

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास के नाटकों के अन्तर्गत जिन गीतों की सृष्टि हुई है वे गीतिकाव्य की दृष्टि से अनुपम और बेजोड़ है। सभी गीत छन्दोमय तथा गेय हैं और इनमें प्रेम की सक्षम अभिव्यक्ति हुई है। अनेक विद्वान वर्णनात्मकता के आग्रह के कारण **'मेघदूत'** को गीतिकाव्य नहीं मानते परंतु इस में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पर गीति तत्व अपनी सम्पूर्ण सुंदरता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

संस्कृत साहित्य में गीत काव्य की वास्तविक परम्परा के प्रवर्तक जयदेव माने जाते हैं। जयदेव द्वारा रचित **'गीत गोविन्द'** गीतिकाव्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचना है। समग्र काव्य में रस का अखंड स्त्रोत जयदेव की गीतात्मक प्रतिभा को उजागर करता है। भावनाओं का माधुर्य, संगीतात्मकता, पदलालित्य,राग रागिनियों से युक्त संगीत की मर्यादा इत्यादि गीत काव्य की समस्त विशेषताएँ 'गीत-गोविन्द' में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'गीत-गोविन्द' में कवि ने अपने पूववर्ती सिद्धों और निर्गुणियों की गीत शैली को अपना कर राधा और कृष्ण के संयोग-वियोग की अनुभूति को विभिन्न राग-रागिनियों के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है कि उसमें गीति काव्य गोविन्द से ही राधा और कृष्ण को जनमानस में परकीया-प्रेम की भूमिका और उपपति उद्दीप्त प्रेम के क्षेत्र में प्रतिष्ठा मिली है। काव्य सौन्दर्य से परिपूर्ण जयदेव की गीति शैली का प्रभाव हिन्दी ही नहीं समग्र प्रादेशिक भाषाओं पर भी पड़ा। भाव और शैलीगत विशेषताओं की दृष्टि से हिन्दी गीतिकाव्य पर जयदेव के व्यापक प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

**'' 'गीत-गोविन्द' में संगीतात्मकता, भावगत मनोज्ञता कवि की आत्मविह्वलता, कोमलकांत पदावली, छन्दों का उचित प्रयोग और कलात्मकता सब कुछ सराहनीय है। इसमें उच्चकोटि की ध्वनि और अर्थ का समन्वय प्राप्त होता है।''**[4]

**※ अपभ्रंश साहित्य :-** अपभ्रंश लोकभाषा थी, अतएव इसमें गेय रचना सबसे अधिक हुई है। अपभ्रंश साहित्य वास्तव में बोद्ध सिद्धों और जैन आचार्यों द्वारा रचा गया साहित्य है जिनमें धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। लोकजीवन में रचे-बसे होने के कारण इन सिद्धों ने अपने चर्यागीतों और दोहों में जनवाणी का प्रयोग किया था।

इस युग में जिन कवियों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं- उन्हें दो वर्गो में विभागित किया गया है। वज्रयानी सिद्ध और नाथपंथी योगी। वज्रयानी सिद्धों की संख्या चौरासी मानी गयी है, ये सहजयानी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हैं। **''वज्रयान सम्प्रदाय के बौद्ध तान्त्रिकों के गीतों में डोमिनी, रजक, चमारी आदि जाति की किसी सुन्दरी के साथ मदिरा सेवन की चर्चा मिलती है।''**[5] इन बौद्ध सिद्धों के विषय में कहा जाता है कि **''ये सभी कवि थे और विभिन्न राग-रागिनियों के आधार पर पद रचना करते थे। अपभ्रंश साहित्य के ये पद राग-ताल समन्वित है।''**[6]

इन कवियों में सरहपा, कणहपा, शबरपा आदि उल्लेखनीय हैं इन कवियों ने 'टेक' की परम्परा को अपनाया, राग का निर्देश किया और छन्दों के अन्त में अपना नाम रखा। भक्तिकालीन कवियों की पद परम्परा, टेक का प्रयोग, राग निर्देश की व्यवस्था तथा अंत में नाम रखने की प्रणाली का उद्‌गम इन्हीं सिद्धों की रचनाएँ है।

**''अपभ्रंश के 'चर्या' राग-रागिनियों में बंधे हैं। चर्या में सरहपा के छंद संख्या 2 में गूजरी, संख्या 32 में राग देशारव, संख्या 33 में राग भैरवी, शबरपा के छन्द संख्या 28 में राग बलाडिंड जैन्बिया के छन्द संख्या 14 में धनाश्री का उल्लेख मिलता है। सिद्धों के समूचे छंद इसी प्रकार के रागबद्ध हैं। इनकी शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों की काव्य शैली पर बहुत पड़ा।''**[7]

11 वीं शत्ताब्दी के लगभग गोरखनाथ के 'नाथ सम्प्रदाय' का प्रार्दूभाव हुआ। यद्यपि

चौरासी सिद्धों की परम्परा में गोरखनाथ की गणना भी की जाती है, किन्तु अपनी नवीन मौलिकता के कारण अपना एक अलग स्थान बनाया।

गोरखनाथ के पद पूर्णतः साम्प्रदायिक हैं। समस्त पदों में सम्प्रदाय संबंधी साधना का ही विस्तृत विवेचन है पदों के बाह्य स्वरूप में उन्होंने सुधार किया, सारंगी और किंगरी के साथ पदों के गान की परम्परा जो इस सम्प्रदाय के योगियों ने चलाई, वह गीति के कलेवर के विकास की एक प्रक्रिया ही समझी जायेगी। इन नाथ पंथियों की भाषा का प्रयोग तथा आत्मा, मन, नाद, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सुरति, निरति तथा गुरु महिमा इत्यादि का उल्लेख पर्याप्त रूप में मिलता है।

जैन गीतिकाव्य का उत्तम काव्य संग्रह 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' वि. स. 1914 में प्राप्त होता है। इसके अनेक गीत विभिन्न राग-रागिनियों से युक्त हैं, इन गीतों का प्रमुख विषय भक्ति तथा महापुरुषों का यशोगान है।

**※ हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य का विकास :–** हिन्दी गीतों का प्रारंभिक विकास अमीरखुसरो की रचनाओं में देखा जा सकता है। उन्होंने फारसी लहजे में भारतीय संस्कृति और सभ्यता को रूपायित किया था। उनका काव्य लोकभोग्य था जिसमें हिन्दी के प्रारंभिक रूप की झलक देखी जा सकती है। खुसरो संगीतज्ञ और कवि थे साथ ही उन्हें लोकगीतों की शैली का पूर्ण बोध था भारतीय लोक साहित्य में गेय गीतों की प्रमुख परम्परा भी खुसरों के गीतों में देखी जा सकती है।

अमीर खुसरो के गीतों में भावों की तीव्रता, सरलता, सरसता साथ ही संगीतात्मकता है और उनकी तर्ज लोकोन्मुखी ही है। डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन ने अपने प्रबन्ध 'गीतिकाव्य के उद्‌गम और विकास' में इनके एक गीत का उदाहरण प्रस्तुत किया है–

**''मेरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल**
**कैसे गरदोनी बकस मोरी माल।**
**नजामुदीनी ओलिया को कोई समझाये**
**जों जों मनाऊ वह तो रुसा ही जाये।**

**मेरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल**
**कैसे गरदीनी बकस मोरी माल।''[8]**

अमीरखुसरो के अनन्तर गीतिकाव्य में सबसे महत्वपूर्ण स्थान मैथिल-कोकिल विद्यापति का है ''जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणित होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई।''[9]

विद्यापति लोकोन्मुखी गीतों के सर्जक थे, उनके पदों में एक ओर तो सहज जनाग्रही राग और भावात्मक उत्कर्ष सन्निहित थे तो दूसरी ओर भक्ति और दर्शन के उदात वैचारिक मंथन भी समाविष्ट थे। यही कारण है कि विद्यापति जनसामान्य से लेकर बुद्धिजीवियों तक समान रूप से लोकप्रियता के शिखर पर रहे थे। उनके गीतों में अलंकार योजना और चमत्कार विधान की अधिकता देखने को मिलती है जैसे-

**''ए सखि देखलि एक अपरूप। सुनइत मानबि सपन सरूप ॥**
**कमल जुगल पर चाँद की माला। तापर उपजल तरुन तमाला॥**
**तापर बेढलि विजुरीलता। कालिन्दी तट धीरे-धीरे चलि जाता॥**
**साखा सिखर सुधाकर पांति। ताहि नव पल्लव अरुनक भांति॥**
**बिमल बिम्ब फल-जुगल विकास। तापर कीर थीर करु बासा॥**
**तापर चंचल खंजन जोर। तापर सांपिन झांपल मोर॥**
**ए सखि रंगिनि कहल निसान। होइत पुनि मोर हरल गियान॥**
**कवि विद्यापति एह रस भान। सुपुरुष मरम तुहू भल जाना॥''[10]**

कवि मानव हृदय का सच्चा पारखी है। विद्यापति ने गीतियों के अतरंग और बहिरंग दोनों को परिष्कृत किया। साहित्य में काव्यानुशासन की व्यवस्था को बनाए रखना तथा साथ ही सांगीतिक शास्त्रीयता का भी निर्वहन करना एक कठिन परिश्रम साध्य है फिर उसे जनाग्रही रुझान के साथ जोड़ना तो और भी कठिन है किंतु विद्यापति में ये सभी विशेषताएँ सन्निहित हैं।

राधाकृष्ण के प्रेमगान के लिए विद्यापति असंदिग्ध रूप से जयदेव के आभारी हैं 'गीत गोविन्द' में राधा कृष्ण की परम्परा को विद्यापति ने निश्चित रूप से एक असीमता तथा अलौकिकता प्रदान की है। श्रृंगार विद्यापति के काव्य की मूल आत्मा है। श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में कवि ने अपनी भावनाओं को राधा और कृष्ण के माध्यम से व्यक्त किया है। उनके संयोग और वियोग की भूमिका पर रचे गये गीतों में रागात्मक आवेश की संगीतात्मक अभिव्यक्ति विशेष रूप से दृष्टव्य है।

विद्यापति के श्रृंगार परक गीतों में जहाँ कवि की भावना राधा अथवा कृष्ण का आलंबन लेकर अभिव्यक्त हुई है, वहाँ दूसरी और उनके भक्तिपरक गीतों में शुद्ध आत्माभिव्यक्ति है, अर्थात एक ओर उनकी अभिव्यंजना का स्वरूप है तो दूसरी और प्रत्यक्ष-

**''ए हरि बन्दौ तुअ पद नाम**
**तुअ पद परिहरि पाप पयोनिधि**
**पारक कओन उपाय॥''**

विद्यापित के पदों में शुद्ध आत्माभिव्यंजना तथा उनमें संगीतात्मकता का अपूर्व योगदान उनके पदों को एक अनोखे माधुर्य से भर देता है। विद्यापति केवल कवि ही नहीं थे, वे संगीत के पूर्ण पंडित थे, उनकी भावनाएँ मैथिल भाषा की मधुरता तथा संगीतमयता से युक्त होकर एक अप्रतिम रूप में उनके काव्य में साकार हो उठी। हिन्दी साहित्य में उनकी स्थिति 'अभिनव जयदेव' के रूप में है।

*** निगुर्ण भक्तिधारा और गीति काव्य :–** कबीर अपने समय के प्रतिनिधि समाज सुधारक क्रांतिकारी कवि थे जिन्होंने परम्परागत रूढियों की जटिल श्रृंखलाएँ तोड़कर एक स्वच्छन्द और सर्वग्राह्य मार्ग प्रशस्त किया था, शोषित, दलित और सर्वहारा वर्ग के पक्ष में हिमायत करने वाले कबीर बड़े ही निर्भीक संत थे, उन्होंने साम्प्रदायिक संकुचन और समाज में व्याप्त कुरीतियों का खुलकर विरोध किया था। वे अपने समय के सर्वाधिक सक्षम समाज सुधारक थे जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपने प्रभाव में सम्मोहित कर रखा था।

कबीर के सभी पदों मे हमें आध्यात्मिक आवेश की परिपूर्णता दिखाई देती है। शास्त्रीय

संगीत की दृष्टि से ये सभी पद गेय भी है। कबीर स्वयं इकतारे की धुन पर जीवन भर इन पदो को गाते रहे। लोकछन्दो का प्रयोग कबीर के पदों में किंचित स्वतंत्रता के साथ हुआ है। लोकगीतों की अनोखी मिठास मधुरता भी हमें कबीर के पदों में प्राप्त होती है। 'कहरा' छन्द में लिखे गये उनके पदो का संगीत लोकगीतों के आधार पर ही नियोजित हुआ है

**''ओढन मांरे राम नाम के**
**रामहि के बनिजारा हो**
**रामनाम के करौ बनिजारा**
**हरि मोरे हरवाई हो।'' 12**

विरह और मिलन के पदों में कबीर की दार्शनिकता उनके प्रेम के साथ एकाकार रूप में अभिव्यक्त हुई है, हृदय का स्पन्दन, व्याकुलता और औत्सुक्य निराशा की पीड़ा तथा इनके अनुरूप राग-रागिनियाँ इनके पदों की विशेषता है।

कबीर के अतिरिक्त दादू दयाल, धर्मदास रैदास, नानक, सुन्दरदास, मलूकदास, आदि भी इसी निर्गुण काव्यधारा के उल्लेखनीय कवि हैं। इस काव्य धारा में दादूदयाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके गीतों में विरहाकुल हृदय अनुभूतियाँ सहज रूप से अभिव्यक्त हुई है। अन्य कवियों के समान दादू ने भी 'साखियाँ' और 'शब्द' लिखे है तथा 'शब्दों' में भिन्न-भिन्न राग रागिनियों के अपनाया है।-

**''अजहुँ न निकसे प्राण कठोर**
**दरस बिना बहुत युग बीते सुन्दर प्रीतम मोर**
**अवध गये अजहुं नहि आये कतहुं रहे चित चोर**
**कबहुं नैन निरखि नहि देखे मारग चितवत चोर**
**दादू अइसहि आतुर विरहित जइसहि चन्द चकोर।''[13]**

**※ सगुण भक्तिधारा और गीति काव्य :-** हिन्दी साहित्य में सगुण भक्ति को एक काव्यधारा के रूप में विकसित तथा प्रतिष्ठित करने में 'अष्ठछाप' के कवियों का महत्व पूर्ण योगदान रहा है। इन सभी कवियों के काव्य की कल्पनात्मक प्रतिभा, रागात्मकता तथा संगीत

की मधुरता ने इनके पदों को अत्यधिक कोमलता तथा सहज स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त कर हिन्दी गीति काव्य को एक अभिनव रूप प्रदान किया है। संगीत और काव्य कासहज स्वाभाविक सौन्दर्य 'अष्टछाप' के सभी कवियों में विशेष रूप में दर्शनीय है। कीर्तन पद्धति को इन कवियों ने संगीत से युक्त कर संगीत का परिष्कार ही नही किया, साथ ही साथ अनेक राग-रागिनियों को जन्म भी दिया। प्रायः अष्टछाप के सभी कवि संगीतमज्ञ भी थे।

पुष्टिमार्ग में प्रेमतत्व की प्रधानता के कारण अष्टछाप के सभी कवि - सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, कृष्णदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, तथा चतुर्भुजदास, ने अपने काव्य में प्रेम तत्व को ही प्रधानता दी है। सभी भक्त कवियों ने कृष्णलीला गान के लिये गीतिशैली को ही माध्यम के रूप में अपनाया, फलस्वरूप इस काव्यधारा में गीतकाव्य का एक परिष्कृत रूप विकसित होते हुए देखते हैं।

कृष्णभक्ति काव्य तथा अष्टछाप के कवियों में सूरदास का अपना एक विशिष्ट स्थान है। भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति, कलात्मक सौष्ठव, गीतात्मक लघुता तथा संगीतात्मत्ता का की दृष्टि से सूर के गीत सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अनुपम है ग्वालबाल यशोदा गोपी तथा राधा की ओट में वैयत्तिक समावेश बड़ी ही सहजता के साथ अनेक पदों में प्रगट हुआ है। मातृहृदय की सच्ची अभिव्यंजना, बाल मनोवृत्ति का मनौवैज्ञानिक निरूपण सूर की अनुपम कलानिधि है।

**गीत काव्य :–** संसार में सभी जगह साहित्य का प्रारंभ गीत से ही हुआ है। गीत जीव का राग है, जीने की लय है, और जिंदा रहने का एक सुखद एहसास भी है, डॉ. शंभूनाथसिंह के अनुसार ''गीत काव्य की आदिम विद्या है, गीत की नवता विभिन्न युगों में भले ही बदलती रहे, पर गीत की विद्या सदा विद्यमान रही है, सहा विद्यमान रहेगी।''[14]

गीत मनुष्य के आनन्दोत्सवी अनुभवों का रागात्मक प्रकाशन है, यहीं से व्यक्ति वैयक्तिक संकुचन से उठकर सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक बनकर सार्वजनीय अनुभावों से जुड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार - ''मुक्तक में रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिससे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है, यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है, इस में उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन

या उसके किसी एक पूर्ण अंश का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध हो जाता है।''[15]

यहाँ शुक्लजी उदास संवेदनाएँ गीत या काव्य की प्रभावकन्विति को क्षणिक ही स्वीकार करते हैं। उनकी हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए ही खिल पाती है या उनकी समझ का श्रोत कुछ क्षणों के लिए ही मंत्रमुग्ध हो पाता है।

मेरा मानना है कि कविता बहुत लंबे समय तक व्यक्ति की संवेदनाओं को झंकृत करती है, बहुत बेचैन कर देनेवाली कविताएँ दीर्घकाल तक मानस पटल पर झंकृतियाँ छोड़ जाती हैं, कभी-कभी तो एक गीत व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को परिवर्तित कर देता है। यही कारण है भक्तिपरक गीत जो सूर, तुलसी या मीरा ने लिखे हैं, वे आज पाँच सौ वर्ष तक मानव जीवन की उदात्त वैचारिकी को तथा सुकोमल संवेदनाओं को प्रभावित किए हुए हैं। समय के साथ जीवन मूल्य बदलते हैं। रचनाकार का नजरिया बदलता है, संवेदनाओं के स्तर परिवर्तित होते हैं और मानस या रसिक श्रोताओं एवं पाठकों की मानसिक अवधारणाएँ भी बदलती हैं।

भारतीय काव्य शास्त्रियों एवं पाश्चात्य विचारकों ने गीति काव्य की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार रेखांकित की हैं -

1. व्यक्तिनिष्ठ अन्तर्दृष्टि
2. अन्तर्निहित संगीतात्मकता
3. स्वतः स्फूर्त सरस भावाभिव्यक्ति
4. कल्पना, विचार और भावों की एकान्विति
5. रसोद्रेक क्षमता, सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति
6. संक्षिप्तता
7. शाश्वत सत्यों के प्रति आस्वस्ति
8. पूर्वापर निरपेक्ष, चित्रात्मक रूप योजना

हिन्दी गीतों का वृत्त लोक से उदित हुआ है। सबसे पहले लोकगीतों के संस्कार ही

समाज एवं परिवार में विकसित हुए, बाद में शिष्टगीतों का रूप सामने आया। प्रारंभ में लोकधुनों का प्राधान्य रहा था। मध्यकाल में शास्त्रीय रागों की रचना हुई तब लोक ने शास्त्रीय रागों की ओर झाँकना शुरु कर दिया। अपेक्षाकृत अधिक विकसित और मैदानी भू-भागों के लोग अपनी रागों में शास्त्रीयता के संस्पर्शी को जीवित करने लगे। बुंदलखण्ड, बघेलखण्ड, पूर्वोत्तर प्रदेश, अवध और ब्रज के लोक ने जो रागिनियाँ इस द्वितीय परिर्वतन में प्रस्तुत किया। वे शास्त्रीयता से ही निष्पन्न हुई फाग, कहरवा, दादरा, बिरहा ये लोकगीतों की रचनाएँ है जिनका आधार शास्त्रीय रागिनीयों से अलग नहीं है। इनका प्रयोग हिन्दी काव्य में बराबर होता रहा है। नवगीत में यह प्रयोग अधिक सार्थकता के साथ संभव हुए हैं-

**''भइया को देती अंकवार / सखियों के रुंधे हुए बैन/**
**प्रियतम संग बीती जो रैन/ दोनों ही करते बेचैन /**
**दो सुधि में सखि का है / जीना दुश्वार /**
**भाभी को देती अंकवार ।''**[16]

जनजीवन में प्रचलित कुछ विश्वास धार्मिक पृष्ठभूमि में उपजते और पुष्ट होते हैं। अनेक तरह के व्रत, उपासना पद्धतियाँ और कर्मकाण्ड जीवन में कुछ परिणामों की प्राप्ति आकांक्षा से किए जाते हैं। करवाचौथ, गणेशचौथ, सोलह सोमवार, तीज, हरितालिका आदि व्रत स्वजनों के हित साधन का अभीष्ट संजोए होते हैं। इन विभिन्न व्रतों के ताने-बाने में संयुक्त परिवारों कि कल्याण कामना एक बारीक भाव सूत्र में पिरोयी होती है। उमाकान्त मालवीय के शब्दों में बेटे के हित साधन के लिए माँ की व्रत साधना का अनुभव देखिए-

**''चन्द्रमा उगा गणेश चौथ का**
**मां तुमने अर्ध्य दिया होगा मेरे लिए**
**दिन भर उपवास किया होगा मेरे लिए**
**बेटा, परदेश में न सो सका**
**भरी भरी आँख ही संजो सका**
**चन्द्रमा उगा गणेश चौथ का।''**[17]

धर्मवीर भारती के काव्य संग्रह ''ठंडा लोहा'' के गीत नवगीत के प्रारंभिक दौर की सफल प्रयोग भूमि है। उनकी एक रचना ''डोले के गीत'' का यह अंश देखिए -

**''भोर फूटे भाभियाँ जब गोद भर आशिष दे दें**
**ले विदा अमराइयों से**
**चल पड़े डोला हुमच कर**
**है कसम तुमको तुम्हारे कोपलों से नैन में आँसू न आए**
**राह में पाकड़ तले**
**सूनसान पाकर**
**प्रीत ही सब कुछ नहीं है**
**लोक की मरजाद है सबसे बड़ी।''[18]**

नवगीत की शक्ल में ''बड़के भाई'' के नाम ''नन्हे के खत का ब्यौरा प्रस्तुत है जिसमें घर, परिवार के निजीजनों को आदर पूर्वक स्मरण करने के बाद समूचे गाँववासियों को उसी आत्मीयता और आदर भाव से नमन किया गया है -''

**भूले बिसरे लिखते**
**सिलसिले तमाम**
**नन्हे का खत बड़के भइया के नाम**
**देखो जी**
**यह खत भी अनदेखा मत करना**
**घर भर का राम-राम**
**गाँव भर का सलाम।[19]**

हिन्दी गीतों की समृद्ध परंपरा में लोक संस्कृति की एक विस्तृत पृष्ठभूमि रही है। इन्हीं लोकगीतों के विविध आयामों ने हिन्दी के शिष्ट साहित्य को सभ्यता प्रदान की है।

## गीत की परिभाषा एवं स्वरूप

स्वर एवं ताल से युक्त 'गान' 'गीत' कहलाता है। वाणी के परिवेश में गीत भावों का

आन्तरिक उद्‌गार है। कवि के हृदय में भावों और विचारों के मंथन की गति जब अभिव्यक्त होने के लिए विवश हो जाती है। तब अमृत रूपी गीत की निष्पति होती है, जिसमें माधुर्य, संजीवनी और सहज निश्छलता भरी सादगी के दर्शन होते हैं। अतः गीत संवेध भावों की रागात्मक अभिव्यक्ति है।

डॉ. शंभुनाथसिंह कहते हैं ''नवगीत में प्रयुक्त 'गीत' काव्य की आदिम विद्या है। गीत की नवता विभिन्न युगों में भले ही बदलती रहे पर गीत की विद्या सदा विद्यमान रहेगीं।''[20]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं ''मुक्तक में रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिससे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्रमुग्ध हो जाता है।''[21]

गीतकार 'भारत भूषण' गीत को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-

'' 'गीत' कविता का रक्त प्राण चेतना श्वास प्रक्रिया है और गीत का नकार स्वयं के न होने का नकारात्मक आत्महंता प्रयास है। गीत कविता की नाभि है, उसका सुगंध द्वार है। कस्तूरी को तलाश ने की जरुरत है। मनुष्य के आंसू कविता बनते हैं। परन्तु जब कविता का मन भी उदास हो जाए वह क्षण के जन्म का क्षण होता है।''[22]

**✲ पाश्चात्य मनीषियों की गीति विषयक धारणाएँ :-** पश्चिम में 'गीत' को लिरिक कहते हैं। 'लिरिक' शब्द ग्रीक के 'लूरा' से बना है यह एक तंत्री वाद्ययन्त्र था। इस प्रकार 'लिरिक' का अर्थ हुआ वह गीत जो ल्यूरा या लीयरे के साथ गाया जाता हैं।

''गीतिकाव्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान प्रो. एस. टी. लाड ने कहा है कि.... ''हिन्दी'' के रहस्यवादी कवि जिस तरह चिरन्तन शाश्वत सत्य की ओर अंगुलि निर्देश करते हैं। उसी प्रकार के आध्यात्मिक स्वरूप का साक्षात्कार गीतिकाव्य में होता है।''[23]

'बुनेतियर' कहते हैं ''गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ

वैयक्तिक भावना अभिव्यक्त करता है।''[24]

'गीत' काव्य की प्राचीनतम विधा है। इसका उन्मेष मानस की सुकुमार कल्पना की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिए हुआ। सौन्दर्य की संशिलष्ट संकल्पना एवं मानवप्रवणता की उन्मुक्त प्रवृत्तिने प्रकृति और पुरुष दोनों को एक स्वर, एक लय एवं गति में बांध लिया जिसे गीत कहा जाता है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने गीत की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा- 'विचिन्तय गीतक्षमर्थजातम्' इससे चरित गायन में गीत की महत्ता सिद्ध होती है। नीरज के अनुसार -

''गीत क्या है ? काव्य की एक विधा, स्वर-संकेत से व्यक्त होनेवाला मन का एकान्त भावाकुल उच्छ्वास।''[25]

गीत को विवेचित करते हुए विन्ध्य वासिनी सिंह का अभिमत है-

'गीत अभिव्यक्ति की वह विधा है जिसमें सत्, चित तथा आनन्द भावों के माध्यम से मनोहारी रूप में मूर्तिमत्ता प्राप्त करते है।'[26]

हिन्दी के प्रख्यात कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन का मत है.... '' 'गीत' काव्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसका भावलोक विशिष्ट होकर भी सीमित है।''[27]

गीत के स्वरूप पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। 'गीत' का सामान्य अर्थ है। 'गाया हुआ', 'गीत' में इसीलिए संगीत को अनिवार्य तत्व माना गया है।

गीत की समसरता के संतुलित संस्करण संगीत में दिखाई देते हैं, सम्+गीत की संरचना ही गीत के समान रस प्रवहन और रागात्मक व्यवस्था के आधार पर हुई है, अतः भारतीय गीत विधा का आधार संगीत भी है अर्थात संगीत की मानद स्वरलहिरयाँ, निर्धारित राग-रागिनियाँ तथा स्थापित आरोह अवरोह की संगति ही गीत को एक सरस और सार्थक जमीन प्रदान करती है। इस तरह रागात्मक छन्दबद्ध और तुकान्त से गीत भारतीय पुराचार्यो द्वारा निर्धारित परिभाषा के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। अब गीत के नाम पर जनगीत, लोकगीत, नवगीत, नवातंर गीत, संगीत, राष्ट्रगीत, वंदनागीत, झंडागीत, पर्वगीत, जागरणगीत, शोकगीत, हर्षगीत अदि विभिन्न रूपों में इसके अनेक प्रकार सामने आते है।

गीत को लेकर अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए है जो दृष्टव्य हैं -

**※ डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्द में :–** ''आत्माभिव्यंजन सम्बन्धी कविता गीतिकाव्य में ही अधिक लिखी गयी है। छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न आत्मनिवेदन स्वाभाविक भी जान पड़ता है। ऐसे पदों में शब्द की साधना के साथ स्वर की साधना भी उत्कृष्ट हो सकती है।''[28]

**※ पंडित लालधर त्रिपाठी :–** 'प्रवासी' के मतानुसार ''भावातिरेक ही गीतिकाव्य का जीवन है। इसमें वस्तु तत्व नगण्य होता है। भावातत्व ही गीतिकाव्य के रोम-रोम में परिव्याप्त होता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि भावप्रधानता के साथ गेयता इसका अपरिहार्य तत्व है।''[29]

''मनुष्य के आँसू कविता बनते हैं परन्तु जब कविता का भी मन उदास हो जाए वह क्षण गीत के जन्म का होता है। ''[30]

इस कथ्य को पाँच जोड़ बासुरी में इस प्रकार व्यक्त किया है-

''एक प्रकार से गीत कविता का सबसे मुश्किल माध्यम है। सब कुछ कह लेने के बाद कवि के मन में जो एक 'भाषातीत गूंज' को भाषा के सम्पर्क से कम-से-कम विकृत या दोषित किया जाए।''[31]

माथुरजी का कथन है ''मैं 'गीत' को अनुभूति का प्रतीक चित्र मानता हूँ। मेरी दृष्टि में गीत यर्थाथ जीवन से उत्पन्न छोटी-से-छोटी मानसिक प्रतिक्रियाओं और तीखी अनुभूतियों की भावनामयी अभिव्यक्ति होती है।''[32]

महादेवी के सन्दर्भ में अवधारणा कुछ इस प्रकार की है -

सुश्री महादेवी वर्मा ने अपनी परिभषा के न्यूनतम शब्दों में अधिकत्तम अर्थ भर दिया है ''साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है सके।''[33]

'अमरकोश' में 'गीत' और गान को एक दूसरे के समानधर्म माना गया है। 'गान' के

सम्बन्ध में यह माना जाता है कि स्वयम्भू शिव ने 'रागरागांग भाषांगक्रियागोपांग' सहित गान विद्या का सर्जन किया और नारद को सिखलाया। नारद के द्वार यह विद्या धरती पर उतरी- **'तदेतन्नारदादिभ्यो दत्तमाद स्वयम्भुवा। नारदेन तथो गानं पृथिव्यामवतरितम।'** गान का सघन प्रभाव बताया गया है और कहा गया है कि मनुष्य की सभी चित्तवृत्तियाँ 'गान' में लुप्त हो जाती है। 'गीत'का कर्तुरूप 'गान' है। 'गीत' का अर्थ रचना विशेष के संदर्भ में लिया जाता है जबकि 'गान' गेयता की पद्धति से सम्बद्ध है। इससे गाने की पद्धति का सम्बन्ध 'रस' से है। शृंगार और हास्य रसों में 'मध्यम' और 'पंचम' वीर, रौद्र और अद्‌भुत रसों में 'षडज' तथा 'ऋषभ', करुण रस में 'गान्धार' व विषाद तथा बीभत्स और भयानक रसो में 'धैवत' समीचिन है।

सामवेद में अनेक प्रकार के गीतों के साधन का उल्लेख किया गया है। गायक अपनी इच्छानुसार किसी भी एक का अवलम्बन कर सकता है। 'गीत' के मुख्य रूप से दो भेद बताये गये है। 'वैदिक' और 'लौकिक'

शास्त्रीयता के आधार पर 'लौकिक गीत' के भी दो विभेद है- मार्ग व देशज 'मार्ग' के अन्तर्गत शास्त्रो में निरूपित परम्परा का निर्वाह किया जाता है।

'नाट्यशास्त्र' के रयाचिता भरतमुनि को भी इसका प्रमाण माना गया है। भगवान शंकर उसके आद्याचार्य हैं अतः उनके प्रीत्यर्थ इसका विधान है। मानव की रूचि और रीति के अनुरप गीतों के रूपों की विभिन्न परिणातियां हैं और इनकी संज्ञा देशी है। साहित्य में जिसे 'गीत' की संज्ञा दी गई है उसका सम्बन्ध इसी 'देशी' विभेद से है। गायकों द्वारा मान्य पदों की स्वीकृति साहित्यक तत्त्वों के कारण नहीं, बल्कि संगीत तत्व के कारण है। लोकगीतों का प्रस्फूटित रूप ही 'साहित्यिक गीत' है ओर साहित्य में यह 'गीतिकाव्य' का प्रारम्भिक रूप तथा अब उसके प्रथम भेद के रूप में जाना जाता है।

प्रारम्भ में जो गीत रचे गये उनका सम्बन्ध लौकिक जीवन से था। जिसका अधिकतर उपयोग धार्मिक विचारों को व्यक्त करने के लिए किया गया। सन्तकाव्य की गीतात्मक रचनाओं में इसके दर्शन होते हैं।

'समूह में जो गीत गाया जाता है इसे 'समवेत गीत' कहा जाता है। 'नाट्यरस' में

'नाट्य' की प्रधानता के साथ साथ 'समवेत गान' का रूप भी मिलता है 'हल्लीश' के समवेत गीत का अभिनयात्मक रूप स्पष्ट है। 'चर्चरी' और 'बेलि' समवेत गीत के ही रूप है।

'गीत' अत्यन्त प्राचीनकाल से मानवजीवन में प्रयुक्त होते रहे हैं। 'नाट्यशास्त्र' के अंतर्गत भी गीतों की चर्चा तथा प्रयोग मिलते हैं। 'गीति काव्य', 'गीत शैली' का अधुनातन में विकसित रूप है। गीत और गीतिकाव्य का विकास लोकगीतों से हुआ है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' के गीतों को इसका आदि स्त्रोत मानने का भ्रम रहा है। बौद्धो ने लोकभाषा को अधिक मान्य ठहराया था, यद्यपि संस्कृत भाषा में भी बौद्ध साहित्य प्राप्त होता है। सिद्धो ने लोकभाषा को अपने गीतों का आधार बनाया, उनके 'चर्यागीत' लोकगीतों के उपदेशात्मक अभियान हैं। गीतों को प्राचीनतम बंगला रचना का आदर्श और उदाहरण महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री मानते है। किन्तु आधुनिक शोधको ने इसको निराधार बताया है। 'लोककाव्य' के रूप में गीत का जन्म हुआ है। ''मानव हृदय की सहज अनुभूतियाँ तथा भावानुकुल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का नाम ही 'गीत' है।''[34]

'गीत' परम्परा का उद्गम स्त्रोत 'लोकगीत' को माना जाता है। लोकगीत अधिकतर ग्राम्य जीवन की या सामाजिक रीति रविाजों की व्याख्या करते हैं। सामाजिक परिवेश में जन्में गीतों में कजली गीत, सोह गीत, शादी-ब्याह के गीत, ढोलक के गीत नाईन के गीत, वियोग के गीत, जन्मदिन के गीत, पुत्रजन्म के गीत, संयोग-वियोग के गीत, मान-मनावन के गीत, दाम्पत्य गीत आदि प्रमुख हैं। अन्य संस्कार के गीतों में वन-विहार, साझी, झूला, पनघट, टेसू, झांकी, नौटंकी, स्वांग, भगत आदि गीत भी समल्लित हैं गीतों का अपना एक विशिष्ट और विस्तृत क्षेत्र निर्धारित किया गया है।

'कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनूरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को 'गीति काव्य' कहते है।'[35]

यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय और स्मरणीय है कि केवल आत्मनिष्ठ और वैयक्तिकता ही गीतिकाव्य के लिए पर्याप्त कसौटी नहीं है। गीतिकाव्य के लिए गीति काव्यात्मक अनुभूति और भावना की अपेक्षा है, जो गीतिकाव्यत्मक विधान के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। गीतों

के अंतर्गत एक विचार, एक अमिश्र अनुभूति और भावना अतवा क संक्षिप्त स्थिति की संगीतात्मक एवं भावाविष्ट अभिव्यक्ति होती है। मानवीय मनोवृत्तियाँ अपनी सहज एवं स्वभाविक स्थिति में गीतों में व्यक्त होती है। अतः उसमें आन्तरिक सौन्दर्य गठन और अन्तर्वेग की तरलता रहती है। ''बौद्धिकता'' की भावात्मक परिणति से भिन्न पाण्डित्य का बोझ गीत के लिए असह्य होता है। इसे अन्तर की आकुलता और वेदना की आद्रता से सिंचित करना पड़ता है। सहज ही वशीकृत होनेवाली यह परिणीता नहीं है।'[36]

'गीत' विद्या में कवि अपने मन की अनुभूतियों भावनाओं संवेदनाओं, वैयक्तिक जीवन की विभिन्न स्थितियों को गीत के माध्यम से उजागर कर सकता था। इसकी (गीत) सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसे समाज के लोगों द्वारा वंश परम्परागत रूप में कण्ठस्थ करके गाया जाता था और यह क्रम आज तक विद्यमान है। इस प्रकार लोकगीतों और साहित्यिक गीतों की परम्परा लोककण्ठ में ही हजारों वर्षों तक जीवित रहा करती थी। 'गीत साहित्य की अन्यविद्याओं की अपेक्षा मानव जीवन में किसी न किसी रूप में जीवित है चाहे वह लोकगीत हो, फिल्मीगीत, भक्तिगीत, प्रेम के गीत, विरह के गीत इन सब का प्रमुख गुण गेयता है। 'गीत' मनुष्य के जीवन में अन्तस तक रचा-बसा है। मानव का हंसना, रोना, खुशी, गम, तीज, त्यौहार, पर्व, सुख-दुःख आदि की अभिव्यक्ति सहज रूप में गीत के माध्यम से होती है इसी वजह से 'गीत' आज भी लोक मानस में लोकजीवन में सबसे सशक्त पहचान बनाकर हमारा है। मनुष्य में जब तक गीत गाने-गुनगुनाने की प्रवृत्ति वर्तमान रहेगी तब तक लोकजीवन में गीत-काव्य का महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। 'जो लोग यह फतवा देते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक और औद्यौगिक युग में गीत विद्या मृतप्राय है वे सामाजिक मनोविज्ञान से अनभिज्ञ हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि हँसना और गाना पशुओं का नहीं मनुष्य का नैसर्गिक गुण है और गाने के लिए गीत की ही आवश्यकता होती है, चाहे वह सांगीतिक गीत हो अथवा साहित्यिक गीत, लोकगीत हो अथवा फिल्मी गीत अतः गीत तक जीवित रहेगा, जब तक मनुष्य जाति जीवित रहेगी।''[37]

'गीत' का जन्म तब होता है जब हम भावावेशित होकर अपने निजी उद्‌गारों को काव्य की भाषा में प्रकट कतरे है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी आन्तिरक अनुभूतियों तथा भावों को जीवंत (सजीव) भाषा में व्यक्त करने की क्षमता गीतिकाव्य की विशिष्टता है।

अनुभूतियों की तीव्रता और व्यक्तिगत भाव उसमें रागात्मकता के तत्व का समावेश कर देते हैं। इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य कर महादेवी वर्मा ने 'गीति काव्य' का विवेचन करते हुए लिखा है-

''सुख-दुःख'' की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना का उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है ।[38]

अतः गीतिकाव्य की तीन प्रधान विशिष्टताएँ हुई-स्वानुभूति (अपनेपन की अनुभूति) रागात्मकता और अनुभूति की प्रधानता अर्थात गेयत्व, अपनेपन की अनुभूति और कोमल भावों की सघनता गीति-काव्य के प्रतिपाद्य हैं।

'गीत' की आभ्यन्तर विशेषताओं में 'आत्मानुभूति' को गीतकाव्य का प्रमुख लक्षण माना गया है। इस आत्मानुभूति के अन्तर्गत कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों का वर्णन होता है। हर अनुभूति के भीतर आत्माकी अपनी निजी अनुभूति सघन रूप में प्रगट हो, वर्णन चाहे किसी वस्तु का हो, पर गीत के भीतर आकर वह वस्तु का कल्पनागत वर्णन न रह कर कवि की अपनी अनुभूति के भीतर आया हुआ वर्णन हो जाता है। उसके भीतर कवि की आत्मा और भावनाएँ ही प्रतिबिम्बित होती हुई मिलेगी।

वेदों में भाष्यकार को उद्‌गाता कहा गया है। इससे साबित होता है कि भाषा का जन्म 'गेयता' से हुआ है। आदिम भाषा का रूप गेय रूप है। तब उद्‌गाता प्रकृति को गा रहा था और गीत के रूप में भाषा का आदिम स्वर बन रहा था। यही कारण है कि बाद में जब वाङ्मय का विकास हुआ तो अनेक विषयों में जो कुछ लिखा गया वह छन्दों में ही लिखा गया। उस समय गद्य का कोई स्वरूप ही नहीं था। आदिम सभ्यता के उस गीतकार को यह पता ही नही था कि जैसे-जैसे हमारी कर्मचेतना से सभ्यता-संस्कृति बदलेगी, भाषा की वाङ्मय में और वाङ्मय भी अलग-अलग बंटते हुए महाकाव्यों, खण्ड काव्यों और वैचरिक काव्यों में बंट जायेगा और काव्यविधाओं में जो गीत तत्व है वह अनदेखा ही पडा रह जायेगा।

सच तो यह है कि उस समय में गीत का स्पष्ट कोई भारतीय स्वरूप नहीं था अन्यथा गीत गोविन्द से मीरा के पदों तक आते-आते गीत की धारा को एक अलग पहचान मिल जानी चाहिये थी। तब गीतकाव्य भी अनेक विद्याओं में एक तत्व के रूप में विद्यमान था। हमारे समीक्षाकारों ने

गीत को एक स्वतन्त्र विद्या के रूप में नहीं देखा। दरअसल हम जिस आधुनिकता की बात करते हैं वह योरोप की देन है। 19 वी शताब्दी के अन्त तक हमारे 'गीत' का स्वरूप योरोप में लिरिक की समीक्षाओं से स्पष्ट होने लगा था। आगे चलकर 'छायावाद' का जन्म हुआ और 'तुमुल कोलाहल' में, मैं हृदय की बात रे मन जैसी श्रेष्ठ रचनाओं का जन्म हुआ।[39]

'गीत' तो आत्मा का द्रव्य है, काल का पाणिनी व्याकरण, इसलिये वह जीवन के कुंभ क्षणों का जलाभिषेक स्वेद कथा की वाणी है। गीत का संदल वन जब महकता है तब मार्डन आर्टीय कविता 'पौ' फटने की पूर्व भूमिका बन जाती है। गीत की दधीचि काया में 'भ'-भाव, 'र' राग, 'त' ताल अर्थात 'भारत' की समूची संस्कृति एवं तितीक्षा बौद्धिक तमस को भेदते हुए आज भी हमारे लिए मार्गदर्शी है। इसलि गीत साहित्य का ही नहीं जीवन का भी स्थायी भाव है। आज मनुष्य की आत्मशून्यता का संकट ज्यादा गहरा है और गीत की इन अन्तरालों को भर सकता है क्योंकि गीत मनुष्य जीवन का अक्षत सत्य है।

'गीत' साहित्य का श्रीमुख है। अतीत, वर्तमान और भविष्य के ग्रन्थिबंधन का शपथसेतु, गीत मानवत्व का भावकोश, सभ्यता, संस्कृति की बुनियादी शर्त है। धूप-छाया की कडी या सहज जीवन-नर्तन, पैनाती परिस्थितियों के बीच अंधकार को चुनौती देने वाला आलोक मुहावरा, जिन्दगी के क्रूर यथार्थो को अपना कर प्रकाश पर्व का सूत्रधार, जीवन, कथानक के केन्द्र में रहने वाला नायक, खलनायकी असत्यों की निराशा को गहरे में काटनेवाला तृप्तिबोध, मन्दिर देहरी पर खड़ा पुकारता विश्वास बोध को नैराश्य क्षणों में जीवन के उलझे प्रश्नों को अपने कलश स्पर्श से मधुर संवाद बना देता है-

**''गीत सौन्दर्य है शास्वत**
**सत्य की आत्मा है वह,**
**वही शिव तत्व रचना का,**
**सृजन परमात्मा है वह**
**बृद्धि को भाव में घोलो**
**गीत प्रारम्भ करना हूँ।''[40]**

**(चन्द्रसेन विराट)**

**"अनगिनती चिन्ताएँ घेरे हैं,**
**लपटों के बीच में बसेरे हैं,**
**जगह-जगह डसा है अभावों ने**
**तोड़ दिया समय के तनावों ने**
**पाँवों में तिमिर चक्र उलझे पर**
**आँखो में धैर्य के उजाले हैं।"**

**(मुकुट सकेसना)**

जीवन समाज का कोई ऐसा पक्ष जो इसकी परिधि में नहीं-सीमाओं में असीम, अस्मिता में सीमित गीतीय दृष्टि अवसाद-विषाद के काल कुठार को काट कर मनुष्य को निर्माण पथ देती है। यही इसकी मन के चेतन द्वार पर विष्णु दस्तक हैं, गतिशील आशुतोष बोध जो दक्ष के अहंकार को चूर कर मानवीय सम्बन्धों को जीवन के सृजन से जोड़ता है। धूप-छाया बिम्बों की शुष्क हरितिमा पर नजर दौड़ाइए हालांकि-

**"जय-जयकारों का अनहद है**
**जलते जंगल में**
**कौन विलाप सुनेगा/घर का/ इस कोलाहल में...**
**अजब दृश्य है, लहरों पर / जालों के घेरे हैं**
**तड़प रही मछलियाँ, बहुत खुश / आच मछरे हैं।"[42] (सत्यनारायण)**

दूसरी ओर सम्बन्धों की त्रासदी पल-पल अन्दर से काष्ठ कीट की तरह कुतर रही है-

**"हौले से कांधे सिर रखना / आँखों से सब**
**कुछ कह देना / समझे कौन सरला भाषा को/**
**गणित हो गया लेना-देना।"43**

**(इन्दिरा मोहन)**

आत्मा की इस वाणी में खेत, खलिहान, चौराहे, पेड़ पशु, से लेकर, ननद, भौजाई,

देवर सास-ससुर, पास-पड़ोस सभी सिमटे हैं। गीत की यह विशेषता है कि उसमें कुछ भी अनछुआ और अनभोगा नहीं रहता। इच्छाओं के उत्कण्ठा बिम्बों में गरीब बेबसी देखिए....

**''कुछ नैहर कुछ घर लौटे हैं परदेसी साथी**
**आओगे मेले में, उनसे भीतो मिले लोगे।**
**छोटी दीदी बात-बपात में मुझे छेड़ती हैं**
**पूजा फलित हूई तो बोलो उनको क्या योगे?**
**आने लगना तो ले आना बाबू को कपड़े,**
**आ जाना, चाहे मत लाना वादे का कंगन॥''[44]**

**(अवधबिहारी श्रीवास्तव)**

गीत निर्मम क्रूर पारदर्शी आँख भी है, जिसके जूम लैन्स में अतीतबोधी इतिहास की रक्त रंजित कोण, किरचें वर्तमान का भाष्य-भविष्य का अनुमान फलक, समूची सृष्टि का व्याकरण शास्त्र अपने को बार-बार पैनाता है, जीवन के सन्धि-समाशों की बनावट में गुह्र गुप्त रहस्य भी है और नियमितवंचक आत्मा का दर्द भी। सभी कुछ सामने संवाद करता नई कविता के बौद्धिक अभिसार से दूर यथार्थ जीवन का कालकूट।-

**''जीवन ने प्रश्न जो उछाले हैं,**
**सब के सब यत्न के हवाले हैं।**
**रोज सुबह चुग्गे की मजबूरी**
**और विषम मन्तव्यों की दूरी**
**डैने हैं तायित्वों से भारी,**
**थक कर भी उड़ने की लाचारी ...।''[45]**

**(मुकुट सक्सेना)**

पलकें आँखों पर भार नहीं होतीं उसी प्रकार गीत जीवन पर भार हो ही नहीं सकता, वह तो पानी की नन्ही धार है जो पत्थर के कलेजे में भी छेद कर देती है। गीत-डगर पर चलना अन्तर्मथन आत्मानुशासन ही हठयोगी डोर पर चलने जैसा है।

संवेदनधर्मी, कलात्मक वैचारिक संयम का दूसरा नाम गीत है, इसलिए साहित्यिक भ्रंमों से निकल कर अकवितावंश के नाटक डर / आंतक को दूर कर गीत कबीर को साधन होगा क्योंकि गीत जीवन का पूरा गुणा-भाग है, बिंदु से समुद्र, अंकगणित से बीजगणित, मनुष्यत्व का महाकाव्यत्मक थीसिस जिसने हर युग में जीवन की 'संपूर्ण रामायण' 'महाभारतीय' परीक्षा दी कर्मयोगी भूमिका में 'गीता' को पूरा बांचा और काल द्वार पर बार-बार आदि.. से उत्तर आधुनिक दस्तक दी।

जीवन के इस नैरन्तर्य में गतिशील अनुकूल ऋतुकला के इस सूक्ष्म भावबोध को महुआ भांग भी बना देती है। लहलहाते अरहर, बाजरा, गेहूँ, सरसों के खेत, नववधू से झूमते मन की परती धरती को सुहाग क्षण देते हैं। मधु-मक्खियाँ कुनमुनाती हैं और सुबह होते ही भ्रमर रात की अठखेलियाँ के संदेश देते हैं। जीवन का यह शहद चक्र कान्हा रस में रम्भाती गायों के सूर-ताल में ढल जाते हैं। आरक्त क्षणों की इन तरलधारी कुनमुनाहटों में द्रवधारी इन्द्रधनुश तन जाता है। एक रवीन्द्र भ्रमर का बिम्ब देखिए...

**''लो, चली गोरी पिया के गाँव सज कर**

**पालकी के पाँव बल खाने लगे हैं।''**[46]

ललक और सम्मोहन के कसक पल एक साथ देखिए....

**''एक पुरानी छत के नीचे**

**हम-तुम मिले बहुत दिन बाद''**

'रवीन्द्रिय बिम्ब में यदि पालकी के पाँव बलखा रहे थे तो इन्दिरा मोहन के पाँव दृढ़ता सें अक्षत-सिंदूर रेख खींच कर अपनी गीत स्मिति देते हैं

**''पथ पर विश्वास मेरा**

**हो गया दृढ़तर**

**तुम्हारा साथ पाकर।''**[48]

गीत के इस विचार दर्शन में समय से सीधा संवाद है। समय-संवाद की यह प्रक्रिया

मनु से अन्दर से होकर गुजरती है। हृदय कक्ष से बुद्धिवीथि तक सने इस सेतु पंथ की रोमांचक यात्रा में गीत मनुष्य की यात्रा का इतिहास रचता चलता है। इन स्वाव मुद्राओं में ही मनुष्य का संपूर्ण रचनात्मक सामाजिक बोध पारदर्शी होकर जीवन को गुनगुनाता चलता है। यही गीत का मर्म है, जीवन का अर्क-बोध क्योंकि गीत सुदामा का धन है जो कृष्ण से अपने पाँव धुलवाता है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पालकी उठाये गीत कहार बनी बनायी लीक पर नहीं चलते युगदर्शन के गर्भद्वार से निकल कर अपने लिए अलग पथ निर्मित करते हैं। मीरा की समर्पण-सहजता, सहजोबाई के 'बिन धन परत फुहार' की तरह जीवन को परिभाषित करती चलती है और गीत काल शोध करता एक मार्गदर्शक की तरह जीवन की जितनी भी तनावमुक्त विभिषिकाएँ है, उन्हें भी वीप्सा अलंकार बना देती है तो कहीं दोहा-चौपाई छन्द। यह जीवन के 'संस्मरण' और 'रेखाचित्र' में अन्तर भी करता है, 'जीवनी' और 'आत्मकथा' की उलझनें नहीं बनने देता, यही इसका महाकाव्यात्मक बोध है। गीत अपने आप में जीवन का ललित निंबध है, सूक्तिधारी आचरण का लोकोक्ति बोध साधे जीवन का काल-मुहावरा। रहीम का जनदोहाशास्त्र, तानसेन का रागधर्मी गुंजन, पावित्र्य भूषण का 'इन्द्रजिमि जम्भ' पद्माकर का स्वीकीयबोध, ठाकुर का लचीला-कचीला, अभिसार, प्रसाद की आभ्यन्तिरिक लहर, पन्त का प्रकृतिसार, निराला की गजलीय नफीसी, महादेवी की करुणा और उत्तर आधुनिकता को चुनौती देती इक्कीसवीं सदी की आँख।

'गीत' मनुष्य मन की शाश्वत तड़प है। अनुभूतिमय राग-चेतना की अमर वाणी है। हर काल गीत की लहरों पर मचलता है। उससे रस पाकर सरस बनता है। गीत पहली बार 1950 के आस-पास समीक्षक पुंगवो और कतिपय रचनाकार की मिली-जुली गहन उपेक्षा का शिकार हुआ। उपेक्षाधर्मी वक्तव्यों और तिरस्कारमय फतवों ने उसके राग-भरे मृदुल मनोमय संसार पर उंगली उठाई। कभी उसके छन्दबद्ध कलेवर पर आपति उठाई, तो कभी उसकी जातीय संस्कार-शीलता को सिमटे रहने वाली कच्छप वृत्ति करार दिया, कभी उसे संगीत और गेयता का पक्षकार होना उसकी कमजोरी कहा, कभी से हीन, व्रात्य, द्वितीय श्रेणी का कवि कर्म कहा गया... और अन्त में उसकी मौत पर मर्सिया भी पढ़ दिया, किन्तु गीत जनता प्रदत

उनके कंठ और हृदय-सिंहासन पर सदैव आरूढ रहा। साहित्यिक मंचो के षडयंत्र भी उसे जन-मानस से निर्वासित नहीं कर पाए क्योंकि वह मनुष्य की पहली सांस के साथ जन्मा उसके जीवन को सजा रहे है। इसीलिए आज भी प्रासंगिक है। उसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाने का अर्थ है। मानव-मन के मूलभूत भावों और संवेदनाओं को प्रश्नचिन्हित करना। सनातन भावों सदृश इसके अंकुर हृदयाभूमि में अपनी नन्हीं जड़ें जमाए रहते हैं और अवसर पाते ही फूट पड़ते हैं। हर मानव विशेष परिस्थितियों अवसरों पर स्वाभाविक रूप से गा उठता है। आज के जीवन की खंडित-लय जोड़ने के लिये गीत और भी अनिवार्य हो गया है।

साठोत्तरी गीतिविद्या ने जीवन की गहन संवेदनाएँ, केशोर्य भावुकता, प्रकृति के सजीले आंगन के साथ-साथ, व्यंग्य, वैचारिकता, बौद्धिकता और यथार्थपकरता को भी स्वयं समेटा है। समकालीन समस्याओं भरे वातावरण में भीगकर ही उसकी कलम गीत धरा पर उतरती है। दिवास्वप्नमय जग के बजाय आज का गीतकार घर-दफ्तर के वास्तविक जग से जुड़ गया है। उसकी अभिव्यक्ति में कसाव है, सारगर्भिता है और शब्दों में आन्तरिक लय की अनुगूँज जिसमें गेयता अर्न्तनिहित है। शोरगुल भरे जगत से लौटा थका- मंदा व्यक्ति घर की आत्मीय छांह में शान्ति चाहता है, तो गीत सुनता है, सुनाता है या पढ़ता है।

सद्यः युगीन परिस्थितियों से प्रेरित गीत, नई गहरी संवेदनाओं और यर्थात बोद से संपृक्त है, लिजलिजी भावुकता, व्यर्थ शब्दाडंबर और थोथी कल्पनाओं को उसमें स्थान नहीं। युगीन सन्दर्भों से जुड़े गीतों में आज आधुनिक भाव बोध, यथार्थ अंकन लोकजीवन से संपृक्त आंचलिक परिवेश की सौंधी सुगंध है। बिना लाग लपेट के गीतकार पाठकों से सीधा हार्दिक संवाद स्थापित करता है। रोजी-रोटी की कोशिश में ग्राम से आए व्यथित मनों को गीतों में पाई जाने वाली ग्रामीण गंध सहला जाती है। गीतों में प्राप्य मूल भारतीय चेतना की ध्वनि नई कविता की अपेक्षा अधिक अपनी लगती है।

गीति अभिव्यक्ति का सफल माध्यम है इसीलिए प्रसाद, पन्त, निराला, गुप्त, महादेवी, रामकुमार वर्मा, बच्चन, नीरज आदि महाकवियों ने इसे आत्मीयता से अपनाया। इससे पूर्व ऋग्वेद, सामवेद, मेघदूत, में तथा मीरा, तुलसी, सूर, रहीम, कबीर, भारतेन्दु, गुप्त आदि की गीतात्मक रचनाओं ने भी गीत की लोकप्रियता सिद्ध कर दी है। उर्दू की नगमें और ग़ज़लें भी

गीत से परस्पर प्रभावित हैं।

बहुचर्चित आँग्ल कवियों ने भी गीत (लिरिक) रचना की है। तात्पर्य यह है कि गीत कोई दुखयम स्तर का काव्य लेखन नहीं जैसा कि कुछ आलोचकों का मत है, अथवा रहा है। गीत तो मानव के हृदय में उमड़े भावों की कलामयी वाणी का आधार है इसीलिए गीतकार कह उठता है।

**''कब से ही**
**धूप-धूप**
**हैं हम**
**अक्षर-भर**
**छाँव मिले**
**क्या कम।''[49]**

**(हरीश निगम, धर्मयुग)**

''गीत ज़लते अगिहानों बीच बन्द द्वार वाला सजग खेतिहर है। संवादहीन बस्तियों के कौने-कौने तक प्रकाश पहुँचाने वाला प्रकाश स्तम्भ है। जीवन कितना ही व्यस्ततम, आडम्बर पूर्ण, वैज्ञानिक सुख सुविधाओं भरा क्यों ने हो जाए मनुष्य और भी ज्यादा मुखौटे लगाकर क्यों न समाज में विचरने लगे। एक पल ऐसा जरुर आता है। जब वह इन सबसे मुक्ति चाहता है। अपने हृदय की राह पर चल कर स्वयं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। अपने ही अन्तर्मन को सहलाना चाहता है। उन नाजुक घड़ियों में गीत ही उसे सहारा देते हैं, तृप्त करते है, अन्य साहित्य विद्याएँ नहीं।''[50] साहित्य नाम के पंछी ने भी जब किताबों में अपना अस्तित्व धारण नहीं किया था। गीत तब से अधरों की हलचल बना हुआ है। यह मानव का चिरसहचर है और रहेगा।''[51]

'गीत' महाकाव्य और मुक्तक से भिन्न व्यक्तित्वधारी है। गीतों की शब्द सरिता में संगीत धारा अन्तः सलिला सदृश सदैव प्रवाहमान रहती है जो सरस, मृदुल और गेय बनाती है। लाक्षणिक सौन्दर्य, मर्मस्पर्शी भाव योजना, बिम्बधर्मिता, भावानुरूप शब्दावली, अनुरूप छन्द, सुगठित रूप योजना गीत को गरिमा प्रदान कतरी है। कोई भी विषय गीत की

आत्माभिव्यंजना के क्षेत्र में प्रवेश पा सकता है। संक्षिप्तता गीत में भावसापेक्ष रहती है। बौद्धिकता या शास्त्रीयता के प्रभल आग्रह से गीत मुक्त रहते हैं पर्वत प्रदेश के अस्खलित निर्झड़ की भांति। मार्मिक प्रसंग गीत को बहुत अच्छे लगते हैं। ''अध्यात्म, राजनीति मानव-मूल्य, तन्त्र-मन्त्र, परिस्थितिगत आक्रोश, नैराश्य, देशभक्तिपरक, उद्‌गार ईश्वर के प्रकृति व पुरुष दोनों रूप गीत के विषय क्षेत्र रुपी विशालकाशकोश के नक्षत्र हैं। गीत में उन्नत संभावनाओं के अनन्त छोर है।''[52]

''सीमित संवेदना की काव्यविधा माना जाने वाला गीत, आज अपने सोच व अभिव्यक्ति में समय की नब्ज पहचान कर सर्जनशील है। इसका एक छोर (सिरा) आधुनिकता से जुड़ा हुआ है तो दूसरा आंचलिकता का। नागरीय जीवन की व्यस्तथा, महानगरीय संत्रास, जीवन का अनेकामुखी द्वंद्व अभिनव शिल्प के परिप्रेक्ष्य में नवगीत में सशक्तता से मुखरित हो रहा है। ध्वस्त होते मानवीय मूल्यों का राग भी गीत ध्यान से सुन रहा है। राजनीति की दुमुखी वृति, भौतिक जीवन की निस्सारता टूटते विश्वासों की मीनारें, अभिशप्त मानव नियति, अजनबीपन के परचम, यथार्थ के तेजाबी ध्वज सभी गीत के रचना संसार के यात्री हैं।''[53]

आधुनिक काल में गीत की जो अविधारा रही वह अधिकतर वैयक्तिक संवेदनाओं पर आधारित थी यह संवेदनाए ही कविता में सम्प्रेषण का कार्य करती हैं। निश्चित रूप से इन आधुनिक कवियों ने अपने सामयिक चिन्तन से सम्पृक्त होकर गीतों में अपने परिवेश को विविध आयामों में व्यक्त किया जो एक नई सोच के अनुरूप था।

गोपालसिंह नेपाली कहते हैं -

**''लाख मुखड़े मिले और मेला लगा,**
**रूप जिसका जचा वह अकेला लगा,**
**रूप ऐसे ने कोई सिंगारा करे,**
**मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे।''[54]**

यहाँ कवि शृंगार की अति अविद्यापरक सपाट बनायी से जुड़कर प्रणय के मांशल वर्णन में गीत की धारा को अग्रसर कर रहा है। इससे इतर पं. नरेन्द्रशर्मा कहते हैं -

**''नवयुग की दुलहन बैठी है खंडगर हुई हवेली में।**
**नई सुबह हंसती है उसकी मेंहदी लगी हथेली में।''[55]**

यहाँ भी गीतकार कविता के सौन्दर्यवादी पक्ष का अवलंबन ग्रहण करता है और लक्षणा के द्वारा नायिका के स्वरूप के आकर्षण की महत्ता ज्ञापित कर रहा है। किन्तु आरसी प्रसाद सिंह इससे इतर तन से हटकर मन के सौन्दर्य को टटोलते नजर आते हैं वे कहते हैं-

**''अपना ही हठ नहीं विनोदिनी,**
**मेरी परवशता भी देखो।**
**शारीरिक आकर्षण ही क्यों,**
**मन की सुन्दरता भी देखो।''[56]**

भवानीप्रसाद मिश्र कुछ अधिक ही संवेदन शील होकर गृहकार्यों में व्यस्त अपनी स्वकीया नायिका का सानिध्य पाने के लिए बड़ी ही सहज भावभूमि की सृष्टि करते हैं जैसे-

**''तुम्हें काम है, किंतु एक क्षण**
**पास बैठ जाने की इच्छा मन में है।**
**बहुत पास हूँ, किंतु एक क्षण**
**और पास आने की इच्छा मन में है।''[57]**

यहाँ कवि गृहस्थ धर्म की मर्यादाओं में बंधा हुआ अपनी आरोपित आचारसंहिता से ऊब कर कुछ क्षण अपने जीवन साथी के साथ व्यतीत करना चाहता है और इन आत्मीय क्षणों में वह नजदीक से और नजदीक आने से इच्छा व्यक्त करता है।

श्री बलवीरसिंह रंग 'गीत' के माध्यम से मरुस्थल में उद्यान की चर्चा करना चाहते हैं-

**''आइए मरुभूमि में उद्यान की चर्चा करें।**
**ध्वसं के संदर्भ में निर्माण की चर्चा करें।**
**निर्झरों, नदियों, तड़ागों**
**की प्रकृति को साधुवाद**

**सिंधु में उठते हुए तूफान की चर्चा करें**
**आइए मरुभूमि में उधान की चर्चा करें।''**

नंद चतुर्वेदी जिंदगी के गीत को गुनगुनाने को कहते हैं, वह शिकायत करते हुए कहते हैं कि आदमी क्यों बर्फ सा हो गया है वह आदमी के अन्दर की आग को उकेरना चाहते हैं, बर्फ हो जाना अर्थात व्यथित ही न हो कर सबकुछ अन्याय सहन करना, कवि इस कायरता-पूर्ण जिंदगी के स्थान पर एक क्रांतिकारी और आगभरी जिन्दगी की हिमायत करता हैं।

**''आदमी क्यों हो गया है बर्फ**
**आग का कोई समंदर ला,**
**गा हमारी जिंदगी कुछ गा।**
**इस तरह किसने लिखा संवाद**
**हो गया संशय, दहन, अवसाद,**
**इस कथानक में बंधा है कौन**
**आखिरी उस आदमी तक जा,**
**गा हमारी जिंदगी कुछ गा।''[59]**

इन सबसे इतर गीतकार ठाकुर प्रसाद सिंह अपनी प्रेमिका की याद में खोए हुए प्रेमिका की सुंदरता उसकी कंगन सी बोली की सुधि करते हुए कहते हैं -

**''नीर जामुनी याद तुम्हारी,**
**खनकी कंगन-बोल सी**
**बहुत दिनों के बाद**
**जंगलो की सुधि मुझ से बोलती।**
**गहरे तीर उतर पानी में,**
**ढीला जूड़ा बांधते**
**तुम मेरे संदेश थामती हो**
**लहरों के हाथ से**

**लाल हथेली पानी में**
**मेंहदी के सब रंग धोलती।**
**नीर जामुनी याद तुम्हारी,**
**खनकी कंगन बोल-सी।''[60]**

जीवन के पथ पर आगे बढने के लिए गीतकार को फूलों का साथ नहीं चाहिए वह कंटीली राहों पर चल कर आगे बढ़ना चाहता है। जीवन की हर मुश्किलों को हल करके आगे बढ़ना चाहता है, तथा हमें प्रेरणा देते हैं कि जीवन रुकने का नाम नहीं हर कदम पर आगे बढ़ते जाना है मंजिल अवश्य मिलेगी-

**''फूलों से नग आसान नहीं होता है,**
**रुकने से पग गतिवान नहीं होता है,**
**अवरोध नहीं तो संभव नहीं प्रगति भी,**
**है नाश जहाँ निर्माण वहीं होता है।**
**मैं बसा सकूँ नव स्वर्ग-धरा पर जिससे**
**तुम मेरी हर बस्ती वीरान करों,**
**मैं तूफानों में चलने का आदी हूँ**
**तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।''[61]**

आधुनिक गीतकार अपनी वैयक्तिक संवेदनाओं से ऊपर उठकर गीत के माध्यम से हमें मानवता का संदेश देना चाहता है मनुष्य-मनुष्य के काम आ सके तो इससे बड़ा कोई पूण्य नहीं है, रोते हुए को हंसाने में ही श्री रामावतार त्यागी को अपने जीवन की सार्थकता नजर आती है वह कहते हैं -

**''रोने वाले के अधरों पर अपनी मुरली धर देने से**
**मैंने अकसर यह देखा है, मेरी तृष्णा मर जाती है।**
**प्यासे अधरों को बिन परसे**
**पुण्य नहीं मिलता पानी को**

याचक का आशीष लिए बिन
स्वर्ग नहीं मिलता दानी को
खाली पात्र किसी की अपनी प्यास बुझा कर भर देने से
मैंने अवसर यह देखा है मेरी गागर भर जाती है।
लालच दिया मुक्ति का जिसने
वह ईश्वर पूजता नहीं है
बनकर वेद-मंत्र सा मुझको
मंदिर में गूंजना नहीं है
संकट-ग्रस्त किसी नाविक को निज पतवार थमा देने से
मैंने अक्सर यह देखा है, मेरी नौका तर जाती है।''[62]

गीतकार उदयभानु हंस कहते हैं -

''आज मानस पर जमी संत्रास की काई,
भोर में भी ले रही रात अंगड़ाई।
सकल जीवन-मूल्य बदलेंगे
हो गए अब हंस बगुलें,
खो गया विश्वास जल में ज्यों बताशा
तस्करों की हाट में प्रतिमा बिकाऊ है
गध जैसी आधुनिक कविता ऊभाऊ है
कब हटेंगे ये मुखौटे?
काव्य में कब छंद लौटे ?
शब्द जाल मरीचिका में हरिण प्यासा

* * * * *

मन रमें जब काभिनी की श्याम अलकों में,
राग, 'अनहद' का सूनो तुम बंद पलकों में

**कृष्ण ने गीता सुनाई, रास राधा संग रचाई।**
**भोग से सन्यास-जीवन का खुलासा''[63]**

आधुनिक मानव की मानसिकता को उजागर किया है जीवन के मूल्य बदलते जा रहे हैं व्यक्ति संवेदनहीन होता जा रहा है।

मुकुट बिहारी सरोज गीत ओर नवगीत के वरिष्ठ हस्ताक्षर रहे हैं मूल रूप से तो इनकी सोच साम्यवादी नजरिये के समान्तर चली है किन्तु व्यापक पटल पर उन्होंने भारतीय मध्यवर्गीय समाजव्यवस्था को भी लक्ष्य किया है। गीत के कथ्य में व्यंग्य का मिश्रण तथा मौलिक अवधारणा इनकी केन्द्रस्थ पहचान रही है। समाज की विश्रृंखलता के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं -

**''हो गया है, हर इकाई का विभाजन**
**राम जाने गिनतियाँ कैसे बढ़ेंगी ?**
**अंक अपने आप में पूरा नहीं है**
**इसलिए कैसे दहाई को पुकारे,**
**मान, अवमूल्यित हुआ है सैंकड़ो का**
**कौन इस गिरती अवस्था को सुधारे**

*** * * * ***

**भूल बैठें है गणित, व्यवहार का हम**
**और बिल्कुल भिन्न होते जा रहे हैं**
**मूलधन इतना गवाया है कि खुद से**
**खुद-ब-खुद ही खिन्न होते जा रहे हैं**
**भाग दें तो भी बड़ी मुश्किल रहेगी**
**राम जाने, सर्जनाएँ क्या बढ़ेंगी ?''[64]**

कुमार रवीन्द्र के गीतों में सामयिक सन्दर्भों की विशिष्ट एवं विस्तृत योजना है। कल्पना के आधार पर यथार्थ का चित्रण किया है। कुमार रवीन्द्र के गीतों का अधिकान्नश स्वर

सरल और सौम्य है, गीतकार को राजपथ की नहीं पगडडियों की आवश्यकता है। अपनों की बस्ती में जीना चाहता है-

**''राजपथ की नहीं, भाई**
**हमें तो**
**पगडंडियो की ही जरूरत है**
**राजपथ बनते नहीं है**
**पाँव से**
**काटते वे हमें**
**अपने ठांव से**
**जोड़ती है हमें पगडडि**
**सगेपन से--गाँव से**
**जहाँ अपने हों सभी**
**हमें तो**
**उन बस्तियों की ही जरूरत है।''[65]**

ज्ञानवती सक्सेना किसी भी परिस्थिति में अपने स्वाभिमान को खोना नहीं चाहतीं हैं वह ईश्वर की दया पर नहीं अपने पुरुषार्थ के बल पर अपने जीवन को धन्य करना चाहती हैं हमें संदेश देना चाहती है कि महेनत के बल पर ही व्यक्ति अपना भाग्य संवार सकता है। ज्ञानवती का यह गीतस्वर उनके स्वाभिमान की पहचान है प्रकारान्तर से उन्होंने नारी अस्मिता और नारी स्वातंत्रय के लिए अपने सम्पूर्ण विचारों को बडे बेवाक शब्दों में प्रस्तुत किया है-

**''सारे संकट**
**रही झैलती**
**मैनें तुमको नहीं पुकारा**
**हाँ। हाँ बहुत ढीठ निकली मैं**
**अब मत देना जन्म दुबारा**

* * * * *

**नाम तुम्हारा करुणा सागर**

**काम तुम्हारा अग्नि परीक्षा**

**झुक कर नहीं, चलूंगीं तन कर**

**ऐसी है मेरी गुरू दीक्षा ''[66]**

रमानाथ अवस्थी जीवन की पीड़ा के गायक रहे हैं उनका स्वर आनंद की तलाश की ओर अग्रसर तो हुआ है किन्तु फिर भी उनमें आंतरिक संचेतना की संवेदना भावनाओं का भी अधिक पोषण हुआ है। यहाँ पर गीतकार रमानाथ अवस्थी मन को अपने वश में करने को कहते हैं तथा साथ ही साथ हमें प्रेरणा देते है कि जीवन-पथ पर आगे बढ़ते रहें क्योंकि समय किसी के लिए नहीं रुकता है तथा वक्त से लड़ना बेकार है उसे अपना काम करने दें और हम खुशहाल जीवन जीएं वह कहते हैं -

**''मन को वश में करो,**

**फिर चाहे जो करो।**

* * * * *

**सोच मत बीते को**

**हार मत जीते को**

**गगन कब झुकता है**

**समय कब रूकता है**

**समय से मत लड़ो।**

**फिर चाहे जो करो।'' [67]**

''वीरेन्द्रमिश्र'' हिन्दी के नवगीतकारों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं अथवा कहा जा सकता है कि नवगीत को एक अभिनव रागात्मक संस्कारण देने के संदर्भ में वीरेन्द्र मिश्र की अहम भूमिका रही है मंच से लेकर मोहल्ले तक। वीरेन्द्र मिश्र की गीत यात्रा सतत अग्रसर होती रही है एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''जब जीवन को यात्रा ही माना है
तब राज-मार्ग के बाहर भी पथ है
दो हाथ-पाँव पाकर बैसाखी ले
लेखनी नहीं इतनी क्षत-विक्षत है
औरों के द्वारा अर्जित सबल लूँ ?
या बांधू बिस्तर और कही चल दूं ?
सतही सामाजिकता के मंच भरे
इन चायधरों का पात्र नहीं हूं मैं
पर टूटे मूल्यों के कोलाहल में
यह सच है दर्शक मात्र नहीं हूँ मैं[68]

जगतप्रकाश चतुर्वेदी जी बहुआयामी साहित्यकार रहे है गीत-नवगीत, प्रगीत, जनगीत लोकगीत और दोहा सवैया तक उनके द्वारा रचे गये है। एक इमानदार सर्जक की तरह उन्होंने वक्त की नब्ज पकड़ी है और अपने विविध आयामी काव्य के द्वारा अपनी वैचारिकी को व्यक्त किया है। मिथकीय कथ्यके आधार पर उन्होंने अपने गीत में व्यवस्था की विसंगतियों और प्रस्तुत समाधानों की असंगतियों के इस तरह गीतांकित किया है।

''लग चुकी है जब शिविर में आग आओ
मान लें घर वृक्ष की
परछाइयों को
जल सिया जैसा धरणि में खो गया है
राम-सा सारस अकेला हो गया है
है वहाँ कीचड़नुमा कुछ दाग
देखें थाह
सरयू की अगम
गहराइयों को।''[69]

स्नेहलता स्नेह अपने सरस गीतों के गायन के लिए कवि सम्मेलनीय मंचों पर विशेष

छाई रही हैं इनके गीत प्रणय और पर्व के गीत हैं कथ्य में कौतूहल और प्रस्तुती में चमत्कृती भी एक विशिष्ट गीत है उनका जो बहुत लोकप्रिय रहा है उसमें वह कहती है-

''कभी-कभी मुस्काने वाले
फूल-शूल बन जाया करते
लहरों पर तिरने वाले
मंजधार कूल बन जाया करते
जितना गूंजित राग तुम्हारा उतना मेरा दर्द मुखर है
एक साथ कैसे पल पाये मन में मौन, अधर पर बानी
सत्य सत्य है किन्तु स्वप्न में
भी कोई जीवन होता है
स्वप्न आगर छलना है तो
सत का सम्बल भी जल होता है
जितनी दूर तुम्हारी मंजिल उतनी मेरी राह अजानी
एक साथ कैसे मिल पाये कवि का गीत, संत की बानी।''[70]

डॉ. शिवबहादुरसिंह भदौरिया जीवन की सचाई को अफने गीतों के माध्यम से उजागर करते हुए कहते हैं कि-

''जी कर देख लिया
जीने में
कितना मरना पड़ता है।
समझोतों की सुइयों मिलतीं
धन के धागे भी मिल जाते,
संबधों के फटे वस्त्र तो
सिलने को है सिल भी जाते,
सीवन
कौन कहां कब उघडे

**इतना डरना पड़ता है**

**मेरी कौन बिसात यहाँ तो**

**सन्यासी भी सांसत ढोते,**

**लाख अपरिग्रह के दर्पण हों**

**संग्रह के प्रतिबिंब संजोते,**

**कुटिया में**

**कौपीन कमंडल**

**कुछ तो धरना पड़ता है।''[71]**

डॉ. विश्वानंदन राजीव बदलते हुए समय तथा आनेवाला कल आशंकाओं से भरा हुआ है तथा जितनी भी आशाएँ हैं वह निराशा में बदल रही है क्योंकि इन्सानियत की भावना लोगों के दिल से मिटती ज़ा रही हैं आज हर तरफ बेईमानी है, हमारे आपसी रिश्तों में दरार पड़ती जा रही है मनुष्य स्वार्थी हो गया है वह केवल अपने बारे में सोच रहा है गीतकार इस समय को बदलने की मांग कर रहा है वह कहता है -

**''गये सूखते**

**आशाओंके**

**जंगल हरे-भरे**

**भाव-विहग**

**सूनी डालों पर**

**बैठे डरे-डरे**

**आशंकाओं का आमुख है**

**आनेवाला कल**

**बादल बेईमान**

**वचन से**

**कैसा मुकर गया**

**हिलाता नहीं घोंसला**

**कजरी गाती नहीं बया**

**कवलित हुई काल से असमय**

**पनघट की हलचल ।''[72]**

विद्यानंदन राजीव परिवर्तित समय के द्वारा प्रस्तुत डगमगाते हुए मानवीय मूल्यों के सामने रखते हैं उनके द्वारा प्रस्तुत समय का चित्र अनेक सामाजिक विसंगतियों को सामने रखता है जहां मानवीय मूल्यों का क्षरण अवश्यंभावी है। गीतकार के अनुसार इस असहीय स्थिति को भोगना हमारी बाध्यता हो गई है हम लोग चाह कर भी इस विषम परिस्थिति को नकार नहीं सकते इस तरह गीतकार गीत के माध्यम से समय का दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

**उमाकान्त मालवीय** : यहाँ वक्त की विभीषिकों को सामने रखते हुए अपने कलाकार के दर्द को व्यक्त करते हुए अपनी बात कहते हैं उनके अनुसार अज जब मानसरोवर ही नहीं है तो हंसों को तो भूखा ही मरना है वैसे तो राख के नीचे दबे हुए अनेक अंगारे हैं और समुद्र की गर्भ में छिपे हुए बहुत सारे ज्वार भी हैं किन्तु फिर भी कुछ तो ऐसा है जो सामने है सरसगान करनेवाली सारिकाए या मैनाएँ नहीं है किन्तु गुस्से में भरे तो है जो विवधर सर्पोको खा रहे वह कहते हैं कि-

**''माना यह**

**मानसरोवर नहीं रहा,**

**हंसों ने लंघन का**

**दर्द भी सहा**

**राख तले दब गए**

**अंगार बहुत है,**

**सागर में संभवित**

**ज्वार बहुत हैं,**

**पंचम गायक कोमल**

**मिले ना सही**

**विषधर खाने वाले**

**क्षुब्ध मोर तो मिले**
**सीपी गज चातक को**
**स्वाति ना सही**
**तोड़ती कगार बाढ़ की**
**हिलोर तो मिले।''[73]**

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र अपनी पीढी के प्रतिनिधि गीतकार हैं अपनी मूल्यहीनता को स्वीकारते हुए वे स्वयं की निरर्थक प्रस्तुति को तथा आरोपीत बाध्यताओं को सामने रखते हैं नैराश्य का अंधकार चारों तरफ व्याप्त हो गया है जहाँ हारा हुआ और थका हुआ आदमी किसी भी क्रिया या प्रतिक्रिया से जुड़ नहीं पाता एक संवेदनहीन स्थिति में खड़ा हुआ व्यक्ति सोच में पड गया है जहाँ उसकी स्वयं की उपस्थिति का एहसास धूमिल पड़ चुका है-

**''हम विदुर बनकर जिये हैं**
**कौरवों में पांडवों में,**
**क्या हमारी अस्मिता है**
**जानते हम उत्सवों में**
**हम गलीचों से बिछे**
**शामियानों से तने हैं।**
**अंतरिक्षों तक उडेंगे**
**एक सपना था हमारा**
**पंख पर सहसा गिरा क्यों**
**टूट कर नभ से सितारा**
**नाविकों की बस्तियों पर**
**घिर रहे काले अंधेरे**
**क्या पता आये – न – आये**
**लौट कर वापस मछेरे**

**अभी द्वीपों से जलधि तक**

**सेतु हमकों बांधने हैं।''[74]**

सोम ठाकुर मंचीय कवि के रूप में अधिक प्रख्यात रहे हैं वैसे भी गीत और नवगीत के संदर्भ में उनके व्यक्तित्व को नकारा नहीं जा सकता **एक ऋचा पाटल** की उनका नवीनतम नवगीत संग्रह है, जिसमें उन्होंने आधुनिक खोज की विस्तृत पृष्ठमि पर अपने निर्धारण अंकित किये हैं सोम ठाकुर के गीत बहुरंगी और वैविध्यपूर्ण हैं इनके गीतों में जहां मेरी धरती की माटी है, चन्दन और अबीर जैसे प्रख्यात हैं वहीं प्रणय के प्रसंग में आमंत्रण भरा यह गीत भी बहुत लोकप्रिय रहा है -

**''लौट आओ मांग के सिंदूर की सौगन्ध तुम को**
**नयन का सावन निमंत्रण दे रहा है।**
**आज बिसराकर तुम्हें कितना दुखी मन,**
**यह कहा जाता नहीं है,**
**मौन रहता–चाहता पर बिन कहे भी**
**अब रहा जाता नहीं है,**
**मीत, अपनों से बिगडती है**
**बुरा क्यों मानती हो**
**दूर होती जा रही हो तुम लहरी–सी,**
**है विवश कोई किनारा,**
**आज पलकों में समाया जा रहा है,**
**सुरमई आँछल तुम्हारा**
**हो न जाए आँख से**
**ओझल महावर और मेंहदी**
**लौट आओ, सतरंगे सिंगार की सौगंध तुम को**
**अनमना दर्पण निमन्त्रण दे रहा है।''[75]**

गीतकार रवीन्द्रभ्रमर गीत के माध्यम से अपनी प्रेमिका के समक्ष प्रणयनिवेदन कर रहे हैं वह अपने प्रेम का, प्यार का विश्वास दिलाना दिलाना चाहते हैं वह अपने प्यार को भोजपत्र पर अश्रु की बूंदों से अंकित करना चाहते हैं, उनका प्रेम पवित्र है वह खजूराहों की मिथुन आकृतियों पर अपना प्यार लिखना चाहता है वह यक्ष की तरह मेघ के माध्यम से संदेश भेजकर अपनी प्रेमिका को अपने प्यारका विश्वास दिलाना चाहता है -

**''बस एक शब्द है प्यार**
**जिसे मैं लिखूं सैकड़ों बार**
**मगर तुमको विश्वास नहीं.**
**मैं भोजपत्र पर लिखूं**
**अश्रु की बूदों से**
**जो मोती–आखर जड़ी**
**विरह की पाती बन जाए,**
**मैं खजुराहों में लिखूं**
**मिथुन आकृतियों पर**
**जो जीवन– रस के**
**सुमन सरोवर छलकाती**
**मैं यक्ष बनूं**
**कवि कालिदास की कविता का**
**आषाढ़ मेघ से कहूँ**
**सजला पंखों पर उड़ जाए,**
**वह जाए अलकापुरी,**
**तुम्हारे मंदिर में**
**मेरा संदेश**
**स्नेह–बूंदो में बरसाए।''[76]**

नईम वस्तुतः कलावादी संचेतना के रचनाकार हैं काव्य प्रतिमाओं के सर्जक तथा

केनवास पर चित्रांकन के चितेरे नईम अनुभूतियों के विविध आयामों को विस्तृत फलक पर उतारते रहे हैं। नईम शुद्ध रूप से नवगीतकार हैं और उन्होंने अपने कथ्य में कही भी कोई निश्चित निबंधन नहीं स्वीकार किया है भारतीय सांस्कृतिक संवेदनाओं को विविध अनुभूत पक्ष नईम के गीतों में अनुंगूजित हुए हैं। नईम की सर्वोपरि पहचान है छोटे-लघुवृत्तीय, सरस तथा सहज गीत उनके गीत में बिम्ब विधान की संयोजना भी अंत्यत सार्थक रही हैं। नईम इसी तरह के एक अनूठे बिम्ब के साथ स्वयं की अस्मिता को व्याख्यायित करते हैं -

**''आओ हम पतवार फेंककर**
**कुछ दिन हो लें नदी-ताल के।**
**नाव किनोर के खजूर से**
**बांध बटोरें शंख-सीपियां,**
**खुली हवा-पानी से सीखें**
**शर्म-हया की नई रीतियां,**
**बांचें प्रकृति पुरुष की भाषा**
**साथ-साथ पानी उछाल के।''**[27]

सत्यनारायण कवि कहते हैं-

**''सूनो कबीर**
**कहत है साधो।**
**हम गुरुबत के**
**पाले पोसे,**
**जीतें है बस**
**भाग भरोसे,**
**तुम ही**
**हमारे राम गोसाई**
**चाहे जितना**
**नाच नचा दो !**

**झूठी पड़ गई**
**उल्टी बांसी,**
**मीन कहां**
**जल बीच पियासी,**
**काशी में**
**हैं सकल पदारथ**
**अब मगहर**
**क्या जाना माधो।''[78]**

नवगीत और गीत के अंतराल को स्पष्ट करने से पूर्व हमें गीतों की सारस्वत नवता को विस्मृत नहीं करना चाहिए। यह नवता जैसा कि कहा जा चुका है- छायावादोत्तर काल में अधिक स्पष्ट हुई है, किन्तु इसकी नींव तो छायावाद से भी पहले पड़ चुकी थी, भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र ने कविता से मिजाज को ही बदल डाला था। उनकी गद्य कृतियों में समाविष्ट काव्यांश भी इसी बदलाव को व्यक्त कर रहे थे। **'अंधेर नगरी'** और **'भारतदुर्दशा'** से इसका अनुमान लगाया जा सकता है। छायावाद में हम जिस आत्मीय संकुचन का आरोपण करके सम्पूर्ण छायावादी गीत-सृष्टि को नकार देते हैं, यह भी उचित नहीं है। नवगीत के संस्थापक कवि निराला भी इसी छायावाद भी देन थे। माखनलाल चतुर्वेदी भी इसी धाराके प्रमुख कवि थे। छायावाद को नये गीतों की जिस जमीन की तलाश की थी, नवगीतकारों ने उसी खेत में नई फसलें लहलहाई हैं इस सत्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। यहाँ छायावादी कवियों ने तथा छायावादोत्तर कुछ विशिष्ट गीतकारों के प्रदान को परखा जा सकता है।

छायावादोत्तर या छायावादी गीतकाल की संक्रमण सीमा के गीतकार गोपालसिंह नेपाली की गीत भंगिमा देखिए -

**''कनखियों से न कोई निहारा करे**
**मन दुबारा तिबारा पुकारा करे**
**अंग भर में न मेहंथी उमासकंर**
**मन दुबारा तिबारा पुकारा करे।''[79]**

यहाँ से प्रतीक विधान बदलने लगा था, पुरावर्तित सोच में भी अंतर आ गया था। पं. नरेन्द्र शर्मा कहते हैं -

**''नवयुग की दुल्हन बैठी है**
**खण्डहर हुई हवेली में।**
**नई सुबर हँसती है, उसकी**
**मेंहदी लगी हथेली में।''[80]**

इसके आगे के पड़ाव में गीत बाहरी वातावरण से हटकर घर के अंदर आ जाता है। घर गृहस्थी की संस्कृति से जुड़ जाता है। जैसे -

**''तुम्हें काम है, किन्तु एक क्षण,**
**पास बैठ जाने की इच्छा- मनमें हैं,**
**बहुत पास हूँ किन्तु एक क्षण,**
**और पास आने की इच्छा मन में हैं।''[81]**

गीत और नवगीत की संक्रमण सीमा यहीं से प्रारंभ हो जाती है जब गीत अपनी सम्पूर्ण सोचसे एक बड़ा मोड़ ग्रहण करता है जैसे-

**''सोन हँसी हँसते हैं लोग,**
**हँस-हँस कर डँसते हैं लोग।**
**भूतों के महलों में**
**हँस-हँस कर बसते हैं लोग।''[82]**

इस दौर ने भी काव्य सौंदर्य का मोह नहीं त्यागा, सहज और आरोपित दोनों ही सज्जा के रूप इस दौर में दिखाई देते हैं, एक गीतांश द्रष्टाव्य है -

**''जब तक रवि में किरन**
**किरन में ज्योति, ज्योति में नवजीवन है।**
**जब तक घन में वज्र**
**वज्र में प्रलय, प्रलय में उद्वेलन है।**

**तब तक धरती के शर पर**

**अंगड़ाई लेता आसमान है,**

**तब तक जिन्दा हूँ, जवान हूँ।''[83]**

लगभग सातवें दएक के बाद गीत का स्वर एकदम अलग रूझान के साथ सामने आता है, एक उदाहरण देखिए -

**''निर्झरों, नदियों, तड़ागों की**

**प्रकृति की साधुवाद।**

**सिन्धु में ठहरे हुए तूफान की चर्चा करें,**

**आइये मरुभूमि में उद्यान की चर्चा करें।''[84]**

गीत में वैचारिक बदलाव यहीं से आया है, प्रस्तुति की सादगी तथा प्रतीकों एवं बिम्बों में नए रूप अपनाए जाने लगे जैसे-

**''इस तरह किसने लिखा संवाद,**

**रह गया संशय, दहन, अवसाद,**

**इस कथानक में बंधी है कौन ?**

**आखिरी उस आदमी तक जा,**

**गा, हमारी जिन्दगी कुछ गा।''[85]**

यहाँ गीत का अलग संस्पर्श आखिरी आदमी तक पहुँचाने का यत्न है और यही अभिमान नवगीत की जमीन है।

इसी दौर के चर्चित हस्ताक्षरों ने गीत की प्रस्तुति में परोक्ष कथ्यों की तथा अभिनव बिम्ब विधान की प्रक्रिया को अग्रसर किया, जैसे -

**''नीर-जामुनी याद तुम्हारी,**

**खनकी कंगन बोल-सी।''[86]**

यादों की भीनी खुश्बु, जामुनी रंगों की गहराइयाँ तथा उनका अन्तस् के एकान्त में

खनकना और वह खनक भी कंगन के मधुर स्वरों की तरह और वे स्वर बोलते हुए जीवन्तथा के सहचर इथने सारे अभिनव प्रयोगों ने गीत के रूप में ही नए आयामों से सज्जित कर दिया।

गीत और नवगीत की इसी संकुचन सीमा पर खडे उर्दू मिजाज की मिठास से सरोबार कवि नीरज ने अपनी एक अलग पहचान दर्ज कराई, रूमानी अंदाज से बाहर निकल कर नीरज ने हिन्दी गीतों को एक नये अंदाज से जोड़ा। उनके गीतों में श्रृंगार की मद्‌होशी भी है तो वक्त की विभीषिकाओं से साक्षात्कार भी जैसे-

**''देखते ही रहो न दर्पन प्रान तुम**
**प्यार का ये मुहूरत निकल जाएगा।''**[87]

इसी तरह -

**''अंगार अधर पर भी मैं मुस्काया हूँ,**
**मैं मरघट से जिन्दगी बुला लाया हूँ,**
**मैं आँख मिचोनी खेल चुका किस्मत से,**
**सौ बार मृत्यु के गाल चूम आया हूँ।''**[88]

इसी दौर में कुछ विशिष्ट मंचीय कवियों ने एकदम नए प्रयोगों से गीतों में गहन सोच को सम्मिलित किया तथा आम आदमी के दर्द को भी सामने रखा जैसे-

**''हो गया है हर इकाई का विभाजन,**
**राम जाने गिनतियाँ कैसे बढ़ेंगी।**
**अकं अपने आप में पूरा नहीं है,**
**इसलिए कैसे दहाइ को पुकार ?**
**मान अवमूल्यित हुआ है सैंकड़ों का,**
**कौन इस गिरती व्यवस्था को सुधारे ?**
**जोड़ बाकी एक-से दिखने लगे हैं,**
**राम जाने पीढ़ियाँ कैसे पढ़ेंगी ?''**[89]

इस दौर की कवित्रियों ने नारी अस्मिता के सवाल पर अपनी बातें रखीं, उन्होंने

पुरुष प्रधान समाज के अधिनियमों को चुनौती दे डाली और श्रृंगार गीतों की प्रकृति ही बदल डाली, जैसे-

**''कंचन काया, कंचन माया,**
**सुनते सुनते ऊब गई मैं,**
**भंवर चीर कर तैर रही थी,**
**नाव देख कर डुब गइ मैं,**
**संघर्षो ने गोद-गोद कर**
**मुझे बाँसुरी बन दिया है।**
**उँगली रखते ही गूँजुगी,**
**पर न जपूँगी नाम तुम्हारा,**
**मैंने तुम को नहीं पुकारा।''[90]**

इसी संक्रमण सोच के दरमियान वीरेन्द्र मिश्र ने बहुत कुछ नया कहने का जोखम उठाया किन्तु कुछ पूर्वाग्रही महाद्यीशों ने उन्हें सिरे से नकारकर हासिये पर डाल दिया, वीरेन्द्र मिश्र पानी की लकीर नहीं थे, वह फूँक मार कर मिटा दिए जाने की तमाम कोशिशों के बावजूद अपनी बात मनवाने का हौसला रखते थे, वैश्विक युद्धोन्माद के विरोध में उन्होंने महाशक्तियों को संबोधित किया और युद्ध के परिणामों को सामने रखते हुए कहा-

**''कंधों पर लादे हैं खूनी यूरेनियम,**
**युद्धो के मलवों से उठते हैं प्रश्न**
**और गिरते हैं हम।''[91]**

आम आदमी की ताकत का इजहार करते हुए वह कहते हैं -

**''तपता रहता है सूर्य पुत्र लेकिन,**
**खद्योत वंश का वृक्ष फैलाता है,**
**फलफूल रही है जुगुनू परम्परा,**
**कठपुतली वाला खेल खेलता है,**

**बौने हाथों का हर्षित सम्बल लूँ**
**या बाँधू बिस्तर और कहीं चल दूँ।''[92]**

फिर आम आदमी का उत्पीड़न, उसकी व्यथा, अभावग्रस्त जिन्दगी का अवसाद सूखा, अकाल, आदि का दर्द सामने आने लगा, गीतकार इस व्यथा कथा से रुबरु होकर कहता है -

**''जल सिया जैसा धरणि में खो गया है,**
**राम–सा सारस अकेला हो गया है।**
**है वही कीचड़नुमा कुछ दाग, देखें थाह,**
**सरयू की अगम गहरायी में**
**लग चुकी हैं जब शिविर में आग,**
**आओ / मान लें घर**
**वृक्ष की परछाइयों को।''[93]**

गीत का मिजाज और उसका कथ्य अब वैयक्तिक नहीं रहा, वह आम आदमी की संवेदनाओं से जुड़ गया। रूमानी गीतों का तामझाम उतरने लगा था। मंच पर कुछ श्रृंगार की गीत गुनगुनाए जा रहे थे किन्तु प्रबुद्ध गीतकार आम आदमी की जिन्दगी को जीने के लिए व्यग्र हो उठा था। गीतधर्म की आचार संहिताओं में आमूलचूल बदलाव आने लगा था, नया अंदाज और अनूठी अदा से गीत की सृष्टि होने लगी जैसे-

**''आँखों की निर्जल जल पीते**
**बरसों बरसों बीते।**
**हर शाम लोट घर ही आये**
**भारी –भारी रीते–रीते**
**चल मन उसके ही शहर चलें**
**मंदिर के बाहर भक्ति भरी,**
**शायद प्रसाद बाँटती मिले।''[94]**

सत्तर के दशक में ही स्नेहलता स्नेह ने गीतों की मंचीय रुझान को एक नया मोड़ देने का प्रयास किया। दाम्पत्य संवेदनाओं को नये आयामों से जोड़ा जैसे-

**''जितना नूतन प्यार तुम्हारा,**
**उतनी मेरी व्यथा पुरानी**
**एक साथ कैसे निभ पाँए**
**सूना द्वार और अगवानी ?''[95]**

यह दौर वस्तुतः मध्यवर्ती धारा से संलग्न था जिसमें गीतकार बार-बार लहरों के आवर्तन में और भँवरों में फँसा हुआ जान पड़ता है। गीत की परंपरावादी भंगिमा से हटना भी चाहता है और उसके मोह को छोड़ भी नहीं पा रहा है। एक और रमानाथ अवस्थी कहते हैं कि-

**''सो न सका कल**
**याद तुम्हारी आई सारी रात**
**और पास ही बजी कहीं**
**शहनाई सारी रात।''[96]**

तो दूसरी और उनका स्वर कुछ एसा भी है-

**''बादल भी है, बिजली भी है,**
**पानी भी है सामने।**
**मेरी प्यास अभी तक वैसी,**
**जैसी दी थी राम ने।''[97]**

इससे हट कर जब वह आत्मकुंठाओं से ग्रस्त होते हैं तो अपनी वैयक्तिक व्यथा को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं -

**''बस्ती में भी रहता हूँ, वीरान के सहारे**
**जैसे कोई मंदिर किसी गाँव के किनारे।''[98]**

यह युग बच्चन की मधुशाला का भी रहा, जहाँ श्रृंगार को अध्यात्म से जोड़ने का प्रयास

किया गया, सुफियानी अंदाज में इश्क की ऊर्जस्विता स्वीकारी गयी, यहीं से गीत मंचीय मनोरंजन-धर्मिता से हटा और गहन वैचारिकी के साथ सामान्य जिन्दगी की अर्थवत्ता से जुड़ा।

शिवबहादुर भदौरिया ने इस बदलाव के दौर में ही लिखा था-

**''अपनी शर्तों पर जीने की**
**एक चाह सब में रहती हैं,**
**किन्तु जिन्दगी अनुबंधन के**
**अनचाहे आशय गहती है।**
**क्या-क्या कहना, क्या-क्या सुनना,**
**क्या-क्या करना पड़ता है ?**
**जीकर देख लिया**
**जीने में कितना मरना पड़ता है।''**[99]

बीसवीं सदी की विभीषिकाओं से रुबरु होता हुआ गीतकार कहता है -

**''नौका रुक गई और आगे**
**रेत रेत हो गयी नदी**
**लौटूँ तो खींच डुबो देगी,**
**दल दल में बीसवीं सदी।''**[100]

यहीं से नवगीत अपनी पहचान बढ़ाने लगा था। शंभूनाथसिंह ने ठीक ही कहा है -

''जहाँ तक नवीगत के आंदोलन और उसके नेतृत्व का प्रश्न है, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और नयी कविता जैसे काव्यआंदोलन न तो यह कभी था और न आज है... नवगीत की रचना करने वाले कवि नयी कविता के विरोधी नहीं थे और उनमें से कई तो नयी कविता के भी सफल कवि थे।.... नयी कविता आंदोलन थी, इस कारण बिखर गई। नवगीत आंदोलन नहीं है, इसी कारण वह उत्तरोत्तर विकसित होता गया है। किन्तु एक समान प्रवृत्ति दोनों में है, जिसने कभी दोनों को जोड़ा था वह है - आधुनिकता की प्रवृत्ति, जो तब तक नहीं मरेगी, जब

तक आधुनिकता का बोध मानव के भीतर रहेगा.... नवगीत ही नहीं प्रत्येक काव्यविद्या के दो रूप सदा से रहते आये हैं- पारंपरिक और रूढ़ तथा नवता एवं मौलिकता वाला रूप।''101

गीत और नवगीत की विभाजन रेखा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए माहेश्वर तिवारी ने कहा था कि-

''हिन्दी में जब कविताएँ समीक्षा की मुद्राओं और समीक्षा-नीति को ध्यान में रखकर लिखी जा रही हों और रचनाकार रातोंरात अपने कृतित्व को विश्व बिरादरी में शामिल करने को लालायित हो उठे हों, उस समय धीरे धीरे रचनात्मकता और अपनी जमीन से जुड़ा रहना एक कठिन कार्य है क्योंकि ईमानदार रचनात्मकता जहाँ निंद्रित या अर्धनिंद्रित सामाजिक मन को संकेत करने का दायित्व निभाती है, वहीं वह उस रस को, उस आद्रता को, उस डबडबाहट को बचाये रखने की कोशिश भी है जो सामाजिक जीवन से धीरे-धीरे सूखता जा रहा । नवगीत इसे निभाता आ रहा है।''[102]

रचना अपने भूल में रचनाकार का नितांत निजी अनुभव या अपने आस-पास से सीधे साक्षात्कार का परिणाम होती है। किन्तु अभिव्यक्ति तक पहुँचते-पहुँचते वह अनुभव या वह साक्षात्कार व्यक्तिवादी मनोविलास की अभिव्यक्ति न होकर समूह मन की चिन्ता, छटपटाहट, कभी-कभी हर्ष उल्लास भी बन जाती है। आज ऑक्टोपस संस्कृति अपनी विविध रुपाकारों वाली टहनियों से व्यक्ति और समाज की अपने अस्मिता को बचाये रखने के संघर्ष को यदि कुछ सार्थक नाम दिये जा सकते हैं तो उनमें से नवगीत भी एक है।

अपनी रचनात्मक यात्रा में नवगीत ने मिट्टी की सोंधी सुवास के साथ ही साथ, एक सर्वथा नयी संगीतात्मकता दी हिन्दी कविता को। नवगीत की यात्रा स्वस्थ समाज के सामाजिक चिंताओं के व्यापक धरातल की पड़ताल है। हर जुलूस में शामिल होकर झंडा लेने, जोर-जोर से जय-जयकार करने वालों ने कुछ समय के लिए अवश्य नवगीत को अपनी अक्षमता और कुहासे से घेर लिया किन्तु अब वे और दूसरे जुलूसों में शामिल हो गये हैं, इसलिए यह खतरा टल गया है ऐसे लोगों ने नवगीत में भी वैसा ही कार्बन लेखन किया है जैसा कुछ लोगों ने नयी कविता में किया था। प्रतिभाहीन घुसपैठिये थे। अच्छा ही हुआ कि उन्होंने

अपनी कमजोर प्रतिभा तथा निरंतर नये-नये जुलुसों में झंडाबरदारी करने की अपनी नियति समझ-पहचान ली। अराजक तथा शिविरग्राही समीक्षा की बैसाखी बहुत दिन उनके काम आने वाली नहीं है। कविता अन्ततः केवल छंद नहीं है किन्तु वह सिर्फ नारा या आन्दोलन भी नहीं है। नवगीत की पहली शर्त है उसका काव्यत्व और कलात्मकता। यह कविता अस्वीकृत कविता, शमशानी कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि की तरह केवल नारा भी नहीं रहा। इसलिए सन् ''50 के आस-पास प्रादुर्भूत होकर वह अब तक उत्तरोत्तर विकासमान है जबकि उसके साथ या उसके बाद उगरे आंदोलन तथा उनसे जुड़े अधिसंख्य कवि खो-बिला गये हैं।''

कविता में सपाटबयानी का कायल नहीं हुआ जा सकता। सपाट केवल गद्य हो सकता है, कविता नहीं। जो कविता सपाटबयानी की वकालत करते हैं उन्हें बाल-बोध कथांए लिखनी चाहिए। उस क्षेत्र में वे मनचाहा भी कर सकते हैं और सफलता की संभावनाए भी अधिक बढ़ जाती हैं। कुछ समकालीन, कोई अच्छी काव्य पुस्तक, उपन्यास, कहानी पढ़ना, कोई अच्छी पेंटिग देखना या शास्त्रीय संगीत सुनना ज्यादा उपयोगी मानता हूँ।

कविता राजनीति बिडम्बनाओं को अपना विषय बना सकती है किन्तु कविता में राजनीति की उठा- पटक नहीं होनी चाहिए।

''हिन्दुस्तान में कविता को लोगों से जोड़ने और कविता के अपने लंबे जीवन के लिए छंद जरूरी है। अन्यथा सिर्फ पाठ्यकर्मों या पुस्तकालयों में संग्रहीत होकर वह जीवित नहीं रह पायेगी।''[103]

गीत से जब नवगीत को पृथक् करने की जरूरत महसूस होती हैं तब हम गीत की अतिरिक्त विशिष्टताओं को रेखांकित करते हैं।

गठन प्रक्रिया की दृष्टि से नवगीत छान्दस संरचना के अन्तर्गत स्वीकार्य है। उसका सम्पूर्ण वृत छान्दस अभियोजना के अन्तर्गत काव्यानुशासित मर्यादाओं के अनुरूप है। गीत का सृजन भी छान्दस अनुशासन के अन्तर्गत ही हुआ है और इस गहन प्रक्रिया के सन्दर्भ में गीत को नवगीत से बहुत अलग नहीं किया जा सकता, छान्दस संरचना के विषय में गीत और

नवगीत एक रागात्मक तथा तुकान्त अनुशासन के अन्तर्गत संतुलित रनचा वृत्त को स्वीकारने के लिए बाध्य हैं। यदि छान्दस अनुशासन की मर्यादा का निर्वहन गीतों में नहीं हो रहा हैतो उस काव्य रचना को हम कुछ भी कहें, लेकिन गीत नहीं कह पायेंगे। नवगीत भी इसी क्रम में गीत का अनुवर्तनी नयी-धारा है, जो अपनी परंपरित आचारसंहिता के अनुकूल अग्रसर होती है। कहने का तात्पर्य यही है कि नवगीत गीत की ही विरासत जी रही ऐसी काव्य-विधा है जिसके मूल वृत्त का गठन छंद, तुक और राग की त्रिवेणी से उदित हुआ है। गीत और नवगीत का निकटवर्ती स्वरूपगत सम्बन्ध भी है। परंपरित तथा रूढ़ शैली में सृजित गीतों की अतिश्रम साध्य तथा पूर्वनिर्धारित छान्दस अनुकृति को नवगीत में ज्यों के त्यों रखने की बाध्यता नहीं है। इसलिए नवगीत की छन्द संयोजन पूर्व निर्धारित छान्दस अनुबंधन को ज्यों का त्यों स्वीकार करने के लिए भी बाध्य नहीं है।

नवगीत में जो छान्दस अंतराल उपस्थित हुआ है वह उसके विशिष्ट स्वरूप को लेकर हुआ है।

वस्तुतः नवगीत की संरचना काव्यानुशासित आचारसंहिता के अनुकूल होते हुए भी उसमें वृत-गत बदलाव की अत्यंत संभावनाएँ सामने आई हैं।

नवगीत में छंद का स्वरूप कवि की प्राकृत संरचनात्मक संचतेना पर आधारित होता है। विभिन्न कवियों ने अपनी-अपनी क्षमता एवं प्रतिभा के अनुरूप नवगीतों की छान्दस अभियोजना तय की है, जिनमें नवगीतकार के व्यक्तित्व की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। नवगीतकारों की पंक्ति में ऐसे अनेक प्रातिभ हस्ताक्षर हैं जिन्होंने संरचनात्मक बदलाव अपने ढंग से तय की है, इनमें ओम प्रभाकर, नईम, कुमार रविन्द्र, बुद्धिनाथ मिश्र, शान्ति सुमन, यशमालवीय, विष्णु विराट के साथ-साथ देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'' भी उच्चस्थ सोपान पर आरूढ़ हुए हैं। इन्होंने छंद की पुरावर्तित धारा का आग्रह तोड़ते हुए छंदों की नयी सृष्टि का संकल्प ग्रहण किया ओर अभिनव नव्यता के साथ बहुत ही सार्थक और विरल नवगीतों की संरचना की।

नवगीत को हिन्दी गीत का नया संस्करण ही कहा जा सकता है और यह नयापन

युगीन परिवर्तन और सामयिक-चेतना से सम्पृक्त रहा है, उसे किसी वाद विशेष या आन्दोलन के रूप में पृथक नहीं किया जा सकता।

''नवगीत'', ''गीत'' का ही एक परिष्कृत संस्करण है, इसे गीत से अलग नहीं किया जा सकता, जहाँ तक गीत में नव विशेषण के प्रयोग का प्रश्न है, यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि हर बदलते समय में अपने वर्तमान काल खंड़ में सृजित गीत नवगीत ही है, कुछ विद्वान इस नवता को निवेषण के रूप में स्वीकारते हैं, कुछ इस नवत्ता को समय सापर्श्च मानते हैं तो कुछ नवगीत की सम्पूर्ण संज्ञा को स्वीकारते हुए इसके नवीन रूप को अर्धवत्ता प्रदान करते हैं।

कुछ तथाकथित पूर्वाग्रही लोग गीत संज्ञा से इतर किसी भी योगिक शब्द को स्वीकारने के पक्ष में नहीं हैं, उनके मतानुसार गीत आखिर गीत ही है, हर काल में नवीन है, हर समय खंड में नवता लिए हुए है, उसे पृथक रूप से नाम देने की जरूरत नहीं है।

गीत और नवगीत का मुख्य अंतराल पुरावाचन या नवीकरण के संस्कार को ही लेकर नहीं है, यह सोच सामयिक परिवर्तित मूल्यों के तहत भी अपनी पृथक पहचान बनाने के पक्ष को उभारता है और एक नई रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

आधुनिक नवगीत की अविधारा को प्रासंगिक वैचारिकी से संलग्न करने वालों में निराला सर्वप्रमुख हैं, जिन्होंने शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टि से इस 'नवता' को सार्थकता दी है। आधुनिक युगीन वैचारिकी ने हिन्दी गती को जो स्वभाविक संस्कार प्रदान किए हैं, वे ही इसे 'नवगीत के नाम से' अभिहित करते हैं, आज के नवगीत को हम निम्नांकित पहिचान देने का साहस कर सकते हैं -

''नवगीत कोई वाद या नारा नहीं है, यह गीत के नवीन क्षितिज का द्योतक है।

यह जमीन से जुड़ी क्रांति हैं, जिसमें सर्वहारा वर्ग ही साझेदारी सर्वोपरि है, थके, 'मांदे, डूरे हुए आदमी की अपनी आत्मव्यथा का गीत है ये।'' 104

यह किसी भी शिविरीय प्रतिबद्धता का मुँहताज न होकर सर्वथा स्वच्छन्द वैचारिक अभिगम है, जो आम आदमी की संवेदना से जुड़ा है।

प्रकृति के प्रति इसका सम्मोहन इसकी उदात्त और संवेद्य भावना का ही प्रतिफल है, किसी प्रतिबद्धता का नहीं।

यह सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के साथ-साथ असत्य और असुन्दरम् को भी व्यक्त करता है किन्तु अशिव से सम्पृक्त नहीं। सर्वशिवत्व की भावना से संलग्न है।

छंद का सारल्य और प्रयोगवादी मौलिक गठन इसमें सतत ग्राह्य है। परंपरा वादकी छंद जकड़ से स्वछंद है। छंदशास्त्र की जड़वादता से भी यह मुक्त है। छंद अभियोजना में यह प्रयोगवादी उपक्रम है। भावानुकूल छोटे-बड़े बंधों में निबंधित रागानुकूल गति विन्यास का पक्षधर है। नवगीत सहजता इसकी प्रमुख पहिचान है।

नवगीत को व्याख्यायित करते हुए अनूप अशेष ठीक ही कहते हैं कि ''पारंपरिक गीत और अगेय कविता दोनों के बीच संवेदनशील कलात्मकता लिये यह पुल की तरह है। नवगीत चौंकाकर अपनी बचत के लिए खेमे नहीं तलाशता रहा। अतीत वर्तमान और भविष्य के तात्कालिक-सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच वह अपने तेवर ओर चमक के साथ उपस्थित है।''[105]

आधुनिक बोध और सामाजिक विकृतियाँ छंदो के सामर्थ्य से बाहर हैं, यह सुभाषित बोलनेवाले पक्षधर आलोचक नवगीत की अस्मिता स्वीकार करने में अपनी हेठी समझते हैं। गीत के इस विकसित और संयमित स्वरूप को किसी भी नाम से सम्बोधित किया जाये, फर्क नहीं पड़ेगा। आज का नवगीत कविता की अन्य विधाओं से अधिक अपने छांदसिक स्वरूप में ही अभिव्यकित का सामर्थ्य प्रस्तुत कर चुका है। कविता जहाँ ठहरने या स्वयं को दुहराने की स्थिति में पहुँछने लगती है, तो उसे लोक-पक्ष की ओर, लोकगीतों की ओर देखना ही पड़ता है। आज की वादग्रस्त प्रतिबद्धता के छंद आयातित मुहावरों वाली कविताओं के बीच नवगीत उसी लोकगंध के साथ उपस्थित है। आज जब कि हर नया लिखने वाला नवगीत हीं लिकने का यत्न कर रहा है, इस विधा को लेकर समीक्षकों और अनुवादक कवियों में भ्रम है। भ्रम ही नहीं, उनमें इसे लेकर भय भी है। जिस टटकेपन याताजगी को लेकर ये लोग रचना से अधिक अपनी चर्चा करवा चुका हैं। उस पर से पर्दा उधड़ जाने का खतरा इन्हें दिखायी पड़ने लगा

है। प्रारंभ में इन लोगों ने अन्य भाषाओं की कविताओं का छायानुवाद कर अपने को प्रतिष्ठित किया। समझ और देशी-विदेशी भाषाओं का सामीप्य बढ़ने से कुछ भी अनपहचाना नहीं रह गया है। यही कारण रहा है कि नयी कविता के अधिकांश कवियों ने लिखना ही बन्द कर दिया या फिर अन्य विधाओं में घूसपैठ करने लगे। प्रतिबद्धता, प्रगतिशीलता जैसे शब्दकोश में पहले भी थे लेकिन कमजोर लेखकों ने अपनी सुरक्षा के लिए इन्हें हथियार के रूप में इस्तेमाल किया।

नवगीत इन सब वितंडावादों से दूर है। यह आज की कविता में सबसे अधिक ग्राह्य सशक्त विधा है। युगीन परिवर्तित परिवेश में गीतकारों की भाषा और शिल्प को प्रभावित किया और नयी भावभूमि दी। बच्चन के बाद की पीढ़ी में गिरजाकुमार माथुर, डॉ. शंभुनाथ सिंह, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, ठाकुरप्रसाद सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि ने गीतों की संवेदना और भाव-कथ्य को नया मोड़ दिया। यहीं से गीत ने नयी कविता के समांतर नये बोध, जीवन के नए अनुभव को नयेपन के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया। छठे दशक के बाद से नवगीत अपनी छान्दसिकता, बिम्बात्मकता, शिल्पगत नवीनता में अधिक खुलकर सामने आया है।

जहाँ तक नवगीत की आचारसंहिता का प्रश्न है, यह कहा जाता है कि सर्वप्रथम नवगीत संज्ञा का प्रयोग राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने सन् 1948 में मुजफ्करपुर, बिहार से प्रकाशित 'गीतागिंनी' के सम्पादन में लिखा था- ''समकालीन हिन्दी कविता महत्वपूर्ण और महत्वहीन रचनाओं के विस्तृत आंदोलन में गीत-परंपरा 'नवगीत' के निकाल में परिणति पाने को सचेष्ट है।..... नवगीत नई अनुभूतियाँ की प्रक्रिया में संचलित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा। जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकालों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा।''[106]

नवगीत को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए कहा गया है कि इस विधा में-

- गेयता
- लय बद्धता
- छान्दस अनुशासन का निर्वाह
- नवीन छन्दों की संरचनाएँ

- उक्ति वैचित्र्य
- सहज अभिव्यक्ति
- सरल भाषा
- सम सामयिक संचेतना
- सामाजिक सरोकार
- आम आदमी की प्रत्यक्ष भागीदारी
- अभिनव प्रतीकों एवं बिम्बों का प्रयोग

सितम्बर 1986 में नवगीत अर्धशती को केन्द्र में रखकर वाराणसी में आयोजित एक समारोह में उपस्थित उन्नीस नवगीतकारों के हस्ताक्षर से एक घोषणापत्र तैयार हुआ जिसमें नवगीत के सत्रह प्रतिमान स्थिर किए गये-

1. छान्दसता और लयात्मकता गेयता से युक्त
2. संवेदन धर्मिता या संस्पर्श शक्ति
3. ग्राह्यता और स्मरणीयता
4. सम्प्रेषणीयता
5. बिम्बधर्मिता या चित्रात्मकता
6. अलंकृति और सादगी
7. खुलापन अर्थात स्वात्तता या प्रतिबद्धता
8. लोक सम्पृक्ति और जनाग्रही रूझान
9. भारतीयता तथा जातीय बोध
10. यर्थाथ का चिन्नण
11. विसंगतियों और सामाजिक शोषण का खुलासा
12. जीवन के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा
13. भारतीय रंग का आधुनिक बोध
14. ऐतिहासिकता तथा सांस्कृतिक चेतना
15. परम्परा की भीतर से जन्मी नवता

16. सौन्दर्य, प्रेम तथा मानवीय भावाभिव्यक्ति

17. जीवन्तथा तथा गत्यात्मकता

इस विधा के स्थापित हस्ताक्षर की उमाशंकर तिवारी ने नवगीत की परख के लिए पाँच कसोटियाँ स्वीकार्य की है -

1. भारतीय संस्कृति तथा भारतभूमि से शहरी संस्कृति
2. आम जनता तथा लोकजीवन से अटूट लगाव
3. सामयिक बोध और जीवन के केन्द्र से 'घर' की प्रतिष्ठा
4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधुनिकता की विकृतियों के विरुद्ध जागरूकता
5. सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विसंगतियों, अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध आक्रोश और विद्रोह की प्रवृत्ति।

समग्रतः नवगीत की सर्वमान्य विशिष्टताएँ जो सामान्य रूप से स्वीकार्य हुई हैं इस प्रकार हैं-

1. आज हिन्दी कविता दो भागों में विभाजित है, छान्दस कविता तथा अछान्दस कविता, नवगीत छान्दस कविता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. नवगीत सहज अभिव्यक्ति है, अलंकार उसके लिए आवश्यक नही, यह बिम्ब धर्मी रचना है।
3. यह सच्चे अर्थों में प्रगतिशील जनवादी काव्य है, जिसका आधार है- मानवतावाद।
4. कर्मनिष्ठ श्रृंगार का चित्रण नवगीत की विशेषता है।
5. भारतीय अस्मिता से जुड़ाव, जिसमें जातीय परम्परा और संस्कृति सच्चा बोध है, इसमें लोकभाषा, लोकसंस्कृति का चित्र सुरक्षित है।
6. निराला की रचनाओं में आम आदमी की पीड़ा का जो मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है, नवगीत उसका सहज विकास है, इस प्रकार उसकी एक सुनिश्चित विश्वासनीय परम्परा है।
7. नवगीत समकालीन कविता की प्रमुखधारा है, और उसमें भारतीय ढ़ंगकी

आधुनिकता की हमें अभिव्यक्ति मिली है, पाश्चात्य ढ़ंग की आधुनिकता उसमें कहीं नहीं है। उसमें लोकगीतों, लोककथाओं, लोकप्रथाओं, लोकजीवन की जीवन्त और गत्यात्मक छवियाँ प्रतिबिम्बित हुई है। **(अक्षत-23, बंसत-2006)**

नवगीत को अधिक स्पष्ट करते हुए उमाशंकर तिवारी अपने नवगीत में ही कहते हैं-

**''सर टकरतो क्यों सुने पन से**
**जो कुछ लेना हो, लो जीवन से,**
**बहुत हुई नक्षत्रों की बातें,**
**कुछ तो घर आँगन की बात करो,**
**द्वारा पर अचीन्हा सन्नाटा है,**
**खुलकर बोलो, मन की बात करो।''[107]**

**( आनेवाले दिन की बात कहो)**

नवगीत के सम्पूर्ण वृत को स्पष्ट करते हुए विष्णु विराट कहते हैं -

**''मिलकर के गाएँ,**
**आओ नवगीत गुनगुनाएँ ।**
**घर आँगन की मन की बातें,**
**जंगल की, उपवन की बाते,**
**गली और मुहल्ले की बाते,**
**रम्मा की कल्ले की बाते,**
**कालकूट हमीं क्यों पिये ?**
**भयातुर भविष्य क्यों जियें ?**
**लोहे की दीवालें ढाएँ**
**बच्चों को उछलना सिखाएँ ।**
**रावन के दे कारावास**

**सीता के रोके वनवास,**

**बाली की भी व्यथा कहें।**

**लक्षमन की भी कथा कहें,**

**समझाएँ वाल्मीकि ऋषि को**

**रामायण फिर से लिखवाएँ।**

**सूख रहे गान के तलाब भरे,**

**दिल्ली के कुओं का उदाव करें।**

**कचों के कारागृह तोड़े,**

**जल्लादी गर्दनें मरोड़े,**

**रामवती को दवा दिलाएँ**

वस्तुतः गीत और नवगीत एक गोत्र के दो संस्कार हैं, हम नवगीत को गीत की संज्ञा से अलग नहीं कर सकते और हर गीत की नवता को भी अस्वीकार नहीं कर सकते। इस संदर्भ में नईम का कथन कहीं अधिक स्पष्ट लगता है वह कते हैं -

''छायावादी गीतों में व्यक्त वैयक्तिक्ता में तथा नवगीतों की वैयक्तिक्ता में वही अंतर है जो दो पीढ़ियों की वैयक्तिक्ता में हो सकता है, संदर्भो के बदलने के परिणाम स्वरूप जो नये सम्बन्ध पनपे उनका परिणाम नवगीत है, जिन्दगी में जो भी लय है, वह सब नवगीत में है।''[109]

इसी संदर्भ में नईम ने नयी कविता और नवगीत के बारे में अपनी स्पष्ट राय अंकित करते हुए कहा है कि ''यह कहना कि नवगीत नई कविता की अनुकृति है, निहायत मुदार्रिसी फिकरा है जैसे यह कि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का, अतः छायावाद बराबर प्रयोगवाद के। अब लीजिए नई कविता छायावादी कविता की छंदहीन अनुकृति है, नवगीत नई कविता की छंदबद्ध अनुकृति है, भला बताइए यह स्थिति क्या सहमति या असहमति की मोहताज है?''[109]

वस्तुतः नवगीत के आगमन के संकेत हमें छायावादी युग में ही मिलने आरंभ हो गये

थे। यूँ तो गीत परम्परा वैदिक ऋषाओं से विद्यापति के गीतों तक और भक्तिकाल से रीतिकाल के कवियों में भी ढूढ़ी एवं प्रतिष्ठित की जा सकती है। किन्तु गीत एवं नवगीत का स्पष्ट दिशान्तर मापने पर इसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं निकलता। आत्माभिंव्यंजना और वैयक्तिकता प्रधान छायावादी युग के कवियों महादेवी, प्रसाद, निराला, पंत ने सुन्दर गीतों की रचना की है।'' तुमुल कोलाहल कलह में एक उत्कृष्ट गीत है। छायावाद के अवरोहकाल में उसकी वैयक्तिकता और भावुकता को बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने कुछ सीमा तक लौकिक बनाने का प्रयास किया किन्तु न तो गीतों की भाषा और शिल्प ही छायावादी सौंदर्यबोध से मुक्त हो सका और न ही दार्शनिकता के आग्रह में ही कुछ कमी आई। हाँ, गीतों को सामान्य जन तक पहुँचाने और उनकी भावभूमि तक उतरने का प्रयास अवश्य हुआ। ठीक इसी समय माखनलाल चतुर्वेदी और नवीनजी गीतों को एक नई दिशा देने का प्रयास कर रहे थे। माखनलाल चतुर्वेदी के कई गीतों में लोकसंवेदना, लोकसंदर्भ और लोकधुन की ताजगी थी। कथन की सहजता, मुहावरेदारी और राष्ट्रीयता का आह्वान हिंदी गीतों में एकदम नया था। 1940 में लिखा नवीनजी का गीत हम निकेतन, फक्कड़पन, मस्ती और भाषायी निखार का सुन्दर उदाहरण है।

इसी क्रम में हम अनेक गीतकारों का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने गीतों में नयापन लाने का प्रयास किया। अज्ञेय में प्रयोग का नयापन था तो भवानीप्रसाद मिश्र में लोकतत्वों का संग्रह। शमशेर बहादुर सिंह बिम्बों और भाषा के स्तर पर नए पन की तलाश में थे तो नरेश मेहता वैदिक ऋचाओं के सौदर्यबोध को हिन्दी गीतों में फिर ले आने का प्रयास कर रहे थे। धर्मवीर भारती ने लोकसंदर्भों का संकलन किया और कड़वे यथार्थ को गीतों में गीतों में स्थान दिया, वही शंभुनाथ सिंह ने गीतों को प्रणय, लोक विज्ञान और संवेदना की भूमि पर लहलहाने का अवसर दिया।

**''पास आना मना**
**दूर जाना मना**
**जिंदगी का सफर**
**वैदखाना बना**

**इस बिना नाम के**

**अजनवी देश में**

**सिर उठाना मना**

**सिर झुकना मना**

**देखना और आँखे मिलाना मना।''[111]**

इसके पूर्व तारसप्तक में गिरिजाकुमार माथुर गीत की नई संभावनाएँ लेकर आए। उन्होंने रुमानी दुनिया और वायवीय कल्पना को गीतों से लगभग निष्कासित किया। किन्तु सामान्य्‌जन तक उनकी पहुँच न हो सकी। अज्ञेय ने गीत शिल्पों का प्रयोग किया किन्तु प्रयोगवादी छवि को न मिटा सके। शमशेर ने पदावली और बिंबों की ताजगी के हुनर दिखाए किन्तु उनका ध्यान गीतों पर अधिक केन्द्रित न रह सका। भवानी प्रसाद मिश्र भी शीघ्र ही नई कविता के ओर मुड़ गए। केदारनाथ ने साहित्यिक गीत शिल्प और लोक शिल्प का समन्वय कर निश्चित ही गीतों में स्पष्ट बदलाव की अपनी नीति को जगजाहिर किया फिर भी वे पूरा समय गीतों को न दे सके किन्तु तब तक नवगीत केलिए एक खासी जमीन तैयार हो चुकी थी।

वायवीय कल्पना, दार्शनिकता, आत्मनिष्ठा और वैयक्तिकता के चंगुल से शनैः शनैः मुक्त होता हुआ नवगीत जीवन के अधिक निकट आता गया। सौंदर्य के नए संदर्भो की तलाश, यथार्थ की ओर बढ़ते कदम, लोक तत्वों की प्रतिष्ठ और रागात्मक जुड़ाव का अनूठा समन्वय गीतों से स्पष्ट झलक रहा था। गीतों में यह नया बदलाव था।

नवगीत के साथ लम्बे समय तक एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह बनी रही कि हमारे बहुत से विद्वान नवगीत को विधा मानने से कतराते रहे। यहाँ तक कि उसमें साहित्य विहीनता के आरोप लगाए गए। अनेक-अनेक भांति दूसरे आंदोलनकारियों ने नवगीत की अस्मिता और अस्तित्व पर प्राणलेवा हमले किये। मानवीय धरातल पर बहती जीवनधारा पर अनर्गल आरोप लगाते हुए उसे रोकने का प्रयास किया गया। लेकिन सब जानते हैं कि जल की धारा किसी के रोके रुकी नहीं है। समय आते ही वह अधिक वेगमान हो उफान भरती, मचलती साहित्यिकों के हृदय तक फैल गई। तथापि अपनी प्राचीन लय से जुड़े रहकर नयी दिशाओं की खोज करने में नवगीत को कई तरह से मेहनत करनी पड़ी।

गीतों से नवगीत तक पहुँचने के पीछे कुछ और भी कारण थे। पुरानी गीतों का रूमानियत भरा रूप घिस चुका था। यथार्थ से सतही जुड़ाव होने के कारण गीतों का साधारणीकरण भी कठिन हो चला था। सौंदर्यबोध में कमी आ रही थी। ऐसी स्थिति में नवगीत कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर बदलाव लेकर आया। कथ्य में विविधता आई। नई पीढ़ी के तनाव, अजनबीपन, निराशा और व्यर्थता के बोध को व्यक्त कर नवगीतकार ने जीवन के संवेदनशील संदर्भो की तलाश की।

जिजीविषा लिये नवगीतकार का मन आंचलिकता और व्यापक सामाजिक दृष्टि से अपनी पहचान बनाने लगा। इस मेहनत में गीतकार वीरेन्द्र मिश्र और धर्मवीर भारती का नाम विशेष है। वीरेन्द्र मिश्र का लेखन 1940 में आरंभ हुआ था। हजारों हजार गीतों के साथ वें विभिन्न मंचों से सुमधुर गायकी अंदाज में छाये रहे। नवगीत की मशाल लेकर वे नवकविता के उस युग में भी चलते ही गये जिसमें एक बड़े समूह की चिन्ता केवल इतनी भर थी कि गीत को किस तरह खारिज कर दिया जाए। विचार प्रधान कविता के उस दौर में भी वे लिख रहे थे।

**''जिन्दगानी गा रहा हूँ**
**मन नही बहला रहा हूँ।''**[112]

उन्होंने नवगीत और जीवन को एकाकार किया है। वैयक्तिकता का आग्रह जो गीतों की विशेषता रही है उनके नवगीतों से हुत दूर है वीरेनंद्र मिश्र का मानना है गीत के नवोन्नयन के मार्ग में अब भी कई बाधाएँ है। नए गीतकारो में नई कविता के नामी-ग्रामी सिद्धहस्त कवि और शब्दशिल्पी शामिल हैं। नई कविता, जो छंदमुक्त होकर भी काव्य संपन्नता की दिशा में सदैव सजग रही है, लयात्मकता से पूर्ण है और गीति तत्वों के कारण गेय भी बनी हुई है, परंतु छंद, नियम तथा प्रयोगों की कर्कशता में उसकी कोमलता आहत हुई है। यह प्रभाव अवश्य ही नवगीत में दिखाई दे रहा है। नवगीत हार्दिकता और अनुभूति की सहजता को साथ लेकर चला हैं। नए प्रतीक, नए अप्रस्तुत, नए छंद विधान एवं नयी भाषा की उपादेयता नवगीत ने स्वीकार की है।

नवगीत के विकास में डॉ. धर्मवीर भारती का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है -''वंशी ौर मादल'' गीत संग्रह में नए गीतों का सहज विकास था। गीत नए रूप में नये वस्तु संगठन और

नये शिल्प के साथ सामने आये। लोकजीवन, लोक परिदृश्य और लोकभाषा की सहजता भी रही। उनकी रागात्मक आंचलिकता और संवेदनशील जीवन संदर्भों के साथ सौंदर्यपरक बिम्बों का चयन भी हुआ। किन्तु क्रमबद्धता के अभाव में कुछ कविताओं को हठात् गीत बनाने का असफल प्रयास भी हुआ किन्तु उनके इस परिवर्तन और प्रभाव को उनके साथ चल रहे गीतकारों ने गंभीरता से लिया और गीत तथा नवगीत की विभाजन रेखा तय की जाने लगी।

डॉ. धर्मवीर भारती का एक और संग्रह ''सात गीत वर्ष'' एक नयी ताजगी के साथ आया। इसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति के कड़वे मीठे संघर्षो के बीच टूटे हुए मन के विक्षोभ को गीतों में बाँधकर धर्मवीर भारती ने अभिव्यक्ति दी है। अपराधबोध से ग्रस्त युवा पीढ़ी की टूटी आस्थाओं और ध्वस्त होते मूल्यों के बीच अपने गीतों में नवगीतकार भारती को स्पष्ट दिखाई देता है कि नई पीढ़ी चुनौतियों से कतरा रही है नई पीढ़ी के संक्रमित मन का यह बोध किसी अन्य गीतकार के लिए कल्पना से परे था। निरर्थकता और त्रासद जीवन के अहसास को डॉ. धर्मवीर भारती ने नवगीतों में स्थान दिया। 'सात गीत वर्ष' ने नवगीत के लिए उर्वर जमीन दी। यहीं से नवगीत की दो धाराएँ हो गयी। एक लोकसंदर्भों को लेकर अग्रसर होनेवाली और दूसरी यथार्थ के तीखे बोध को लेकर प्रवाहित होने वाली। एक में रागात्मक सघनता है तो दूसरे में यथार्थ बोध के कारण व्यंग्य का पैनापन। डॉ. धर्मवीर भारती के नवगीतों की विशेषता है यथार्थ की खुरदरी भाषा और जीवन संघर्षों को व्यक्त करने के लिए युद्ध की शब्दावली का एकदम नया प्रयोग।

डॉ. विष्णु विराट ने गीत और नवगीत के अंतर को बड़े ही सहज ढंग से व्यक्त करते हुए कहा है-''नवगीत और गीत में जमीन-आसमान का अंतर है, नवगीत जमीन से जुड़ा हुआ राग है तो गीत आकाश में काल्पनिक उड़ान भरता हुआ सतरंगी इन्द्रधनुष है। जमीन पर खड़ा हुआ नवगीत हमारी अपनी पहचान को, हमारी खुशियों से, पीड़ाओं से रूबरू होता हुआ हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी से बात करता है तो गीत मन की भावात्मक परिकल्पना से साहचर्य करता हुआ हमारे अन्तस के आनन्दोत्सवी क्षणों को समायोजित करता है।''[113]

गीत का अगला पड़ाव नवगीत है किन्तु वह गीत से पृथक कोई नयी संज्ञा नहीं हैं।

नवगीत के संदर्भ में देवेन्द्र शर्मा इन्द्र का यह वक्तव्य सामयिक और सार्थक है, जब वह कहते हैं-

''कुछ लोग हैं जो बार-बार कहते नहीं अघाते कि नवगीत का नाता शुद्ध भारतीय मिट्टी, खाद और हवा पानी से है और ऐसा कहना सोलहों आने ठीक भी हैं; परन्तु वे प्रचार, प्रहार और अर्थप्राप्ति की हवस में साम्राज्यवादी और पूँजीवादी राष्ट्रों में नवगीत समारोह के आयोजन की ''स्कीमिंग'' किसलिए करते हैं ? तथ्य तो यही है कि नवगीत के प्रचार के बहाने स्वयं विदेश यात्रा करने और अपनी जेबों को डॉलरों से भरने के अतिरिक्त उनका उद्देश्य नहीं है, भाड़ में जाये नवगीत, उनकी बला से, पहले जब कोई नयी कविता का कवि अपने साधनों अथवा युक्तिकौशल के बल पर अमरीकाभ्रमण के लिए जाता था अथवा दो-बार सुकुंड मंचीय गीतकार भी ऐसा कर बैठते थे तो वे उन परलाठी लेकर पिल पड़ते थे और जब आज उन्हें खुद अपने लिए विदेशयात्रा के दरवाजे खुलते नजर आने लगें हैं, तो रातों-रात उन्होंने अपने मूल्यों और विचारों में संशोधन कर लिया। वस्तुतः ऐसे लोग विगत कई दएकों से इसी प्रकार के पिलपिले और लुढ़कते हुए व्यक्तित्व को जीते चले आ रहे हैं। कभी वे मंचीय और कविसम्मेलनी मित्रों के साथ समझौता करते रहेतो कभी अपने-आपको नई कविता वालों का जुड़वा भाई कह बैठे। वस्तुतः वे ''स्थायीभाव'' के खूंट से बंध तो हैं नहीं; जैसा उनका ''व्यभिचारी भाव'' कहता हूँ वैसा वे भी दुहराने लगते हैं।''[114]

वास्तव में जो गीतकार है, उनके भीतर इस प्रकार का दोहरापन या दोगलापन नहीं मिलेगा आपको, जो सही रूप में सर्जक और साधक होते हैं वें अपने आपको अलग-अलग व्यवहारों पर अलग-अलग मुखौटों से नहीं सजाते न उन्हें कुछ पानी की आकांक्षा होती है और न कुछ जाने की आशंका जिन्हें अपने साम्राज्य और गुरुड़म को बरकरार बनाये रखने की चिन्ता होती है वे साहित्य जगत् में जहाँ नये-से नये घातशस्त्रों का अविष्कार करने में लगे रहते हैं वहाँ अपनी सुरक्षित स्थिति के लिए हर रोज अपने शिष्यों की बटालियनें खड़ी करते और कल के विरोधियों से सन्धि कर के नाम पर अपने आपके विश्वसनीय और पायेदार साथियों को अपनी सूची में से खारिज करते चले जाते हैं। नवगीत के पाठकों, समीक्षकों और अनुसंधानकर्ताओं को उन लोगों को आज नहीं तो कल बेनकाब करना ही होगा और तब वें

पायेंगे कि उन स्वयंभू चक्रवर्तियों के ढोलों में कितनी पोल और खोखलापन था; उन्होंने अपनी शिष्य परम्परा बनाये रखने के लिए कितने युवकों को अपने ही हाथों लिख-लिखकर सामग्री न दी होगी और अपने कितने सही मित्रों की जड़ो में मट्ठा न डाला होगा। वें लोग कभी इस बात को सोच भी नहीं सकते कि कोई उनसे ''लाइसेंस'' लिये बिना नवगीत के देश में कैसे सुरक्षित और सम्मानित जीवन जी सकेगा। जब तक कोई समानधर्मी नवगीतकार उनके टोले से जुड़ा है तब तक तो सब कुशल है और यदि लगे कि वह बगावत पर उतरने जा रहा है तो वे उसके विरुद्ध ऐसी व्यूह रचना कर दे कि बच्चू को छठी का दूध याद आ जाये। जो सच्चा नवगीतकार होगा वह ऐसे खलीफाओं से घबरायेगा भी क्यों ? सही रचनाकार के पास जैसा आत्मबल होता है वैसा इन परोपजीवी और स्वयं को ''शुद्ध'' कहने वाले व्यक्तियों के पास नहीं होता। तभी तो इन्हें अपने आगे-पीछे एक जमात लेकर चलने की आदत हो जाती है। प्रेमचन्द, ''प्रसाद'', ''निराला'' और ''मुक्तिबोध'' के युग को बीते अभी सदियाँ नहीं गुजरी है..... न तो उन्होंने स्वयं को साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए नगर-नगर में अपने विशिष्ट कतृत्व की डुगडुगी पीटी थी और न ही विदेश यात्राओं के कार्यक्रम ही बनाए थे, संभवतः उनमें से एक ने भी अपने समकालीन रचनाकारों के पास इस आशय की इसरारभरी चिट्ठियाँ नहीं लिखी होगी कि वे अपने-अपने कसबों और नगरों में उन्हीं की अध्यक्षता में गोष्ठियों और अधिवेशनों की व्यवस्था ही न कराये प्रत्युत उनके कीर्तनियों के मार्गव्यय एवं दानदक्षिणां का भी प्रबन्ध करें। वे लोग साहित्य यात्रा के दौरान जिन मंजिलों तक पहुँचे थे उन पर उनके पाँवों के निशान आज तक बने हुए हैं, क्योंकि वह यात्रा उन्होंने बैसाखियों के बल पर तय नहीं की थी।

कल के उन पुराने और दिवंगत शब्द यात्रियों की तुलना में ''नवता'' और ''शुद्धता'' के ढिंढोरची, हमारे समकालीन अनेक महानुभाव अपनी पूर्ववर्त्ती रचनाओं को नयी-नयी जिल्दों के भीतर कैद करके यश और अर्थ प्राप्ति का अभिनिवेश कर रहे हैं जो पुरानी बोतल के ऊपर नये लेबिल के अतिरक्ति कुछ भी नहीं हैं। नगर-नगर में नवगीत-जयन्तियाँ मनाने के छद्‌म स्वरूप ये खलीफे जिस नौटंकी का आयोजन करने जा रहे हैं उससे नवगीत का क्या बनेगा? इस किस्म की कमजोर बैसाखियों का सहारा लेकर ऊपर-ऊपर से ''नवगीत'' का नाम जपते-जपते आदि वे विश्व भ्रमण पर निकलने का इरादा कर रहे हों तो बेहतर यही होगा कि

वे 'गिन्सबर्ग' की शैली पर न चलकर गांधी, विनोबा, जयप्रकाश, चंद्रशेखर अथवा बाबा आमटें की पद्धति को अपनाये। भारतीय संस्कृति और नवगीत दोनों का ही वे इस प्रकार हित-संपादन कर सकेगें।

संतोष की बात यह है कि आज भी ऐसे दसियों संकल्पनिष्ठ और सृजन के प्रति आस्थावान नवगीतकार हिन्दी में मोजूद हैं जो इस प्रकार की शिविरबद्धता और क्षेत्रीयता से बिना जुड़े साधनारत है। यह माना कि वे जितने साधना के धनी हैं उतने ही साधनों और जोड़-तोड़ की राजनीति से विर्धम भीहै, और इस प्रकार आज भी वे नवगीत के प्रथम पुरुष महाप्राण 'निराला' की नियति को ही जी रहे हैं। परात्पर सत्य तोयह है कि किसी भी काव्यधारा को अक्षुण्य और अकुण्ठ प्रवाह ऐसे ही साधनहीन किन्तु साधनाव्रती सरस्वती पुत्रों के स्वेदसलिल से प्राप्त होता है, नवगीत की अंतःसलिला का फल्गु प्रवाह भी अभी पथरीली, रेतीली और अग्निगर्भा घाटियों के बीच से हो रहा है जिसे समतल तक लाने के लिए उन्हें अनगितन परीक्षाएँ देनी होगीं। नेतृत्व की अपेक्षा सामान्यतः एक ऐसी भीड़ की होती है जिसके पास चलने के लिए पाँव तो होते हैं किन्तु सही दिशा देखने वाली आँखों का 'कुतुबनुमा' नहीं होता। प्रसन्नता का विषय है कि नवगीत के पास अपना लम्बा सफर तय करने के लिए मजबूत पाँव और दूरदर्शिनी दृष्टि दोनों ही है। किसी नेता का मुहताज न वह पहले रहा, और न आज ही है। नवगीत के कृष्ण के पास वह युक्ति-कौशल है कि समय पड़ने पर अपनी सोलहों कलाओं का खुलकर प्रदर्शन और विस्तार कर सकता है। वह अपनी लीला के प्रदर्शन में किसी 'बलराम' को तो भागीदार बना सकता है, किन्तु किसी शास्त्राभ्यास जड़ उद्भव की तथाकथित ज्ञान गरिमा के चाकचक्य में फँसकर दिगन्धता को निमंत्रण कदापि नहीं देना चाहेगा।

सातवें तथा आठवें दशक तक नवगीत ने अपनी पहचान पुख्ता रूप में दर्ज करा दी थी। अनेक सार्थक और सशख्त हस्ताक्षरों ने इस विधाको सम्पन्न तथा समृद्ध बना दिया था किन्तु इस नवगीत का प्रारम्भ आधुनिक के प्रथम चरण से ही आवासित होने लगा था। डॉ. बंसीधर उचित ही सकते हैं -

''हिन्दी साहित्य से आधुनिकता की पहचान कराने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

को है। भारतेन्दु के जन्म के सात वर्ष बाद यह देश स्वतंत्रता की पहली लड़ाई लड़ता है, जिसे साम्राज्यवादी ताकतें साल भर के भीतर-भीतर किसी तरह असफल कर देती है। यह संघर्ष की जिन मानवताओं से प्रेरित होकर आर्थिक एवं राजनीतिक मुद्दों पर लड़ा गया था तथा जिस क्रूरता के द्वारा अंग्रेजों ने इस जन रोष को दबाया था, उसका व्यापक प्रभाव भारतेन्दु और उनके परवर्ती द्विवेदी-युग को भी पर्याप्त मात्रा के परिप्लावित करता पाया जाता है।''115 डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है, ''जो नवजागरण सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम से आरम्भ हुआ, वह भारतेन्दु-युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी-युग में और भी पुष्ट हुयी, फिर निराला के साहित्य में कलात्मक-स्तर पर तथा उनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रातिकारी रूप में व्यक्त हुयी।''116 निराला पर भारतेन्दु और उनके युग का कितना प्रभाव था, इसका परिचय भारतेन्दु जन्म-शती (1950 ई.) के अवसर पर दिये गये उनके भाषण के इस वाक्य से बखूबी प्रगट हो जाता है- ''मैं उनके दरबार का एक दरवान हूँ।''[117]

निराला जिस जमीन पर खड़े होकर जीवन-यथार्थ की कठोर सच्चाइयों से गीत की मूलाकात करने के लिए प्रयत्नशील थे और इसके लिए वे गीत को जिस नवीन भाव-शिल्प से सवारने में जुटे थे, वही जमीन नवगीत के उत्स के लिए उत्तरदायी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है - ''उन्होंने (निराला) गीतों की नयी परम्परा को जन्म दिया है।.... सन् 26 के बाद वह एक नयी शैली के गीत लिखने की चेष्टा करते हैं।''118 यह निराला ही थे जिनके पास पहुँचकर गीत कल्पनालोक से उतरकर धरती पर आया। सामाजिक यथार्थ, मानवीय करुणा, सहानुभूति से सम्पन्न हुआ, हमारे राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक स्वरों का सम्पादक बना, लोकधुनों एवं लयों से अपने को समृद्ध किया एवं जिनके कारण उसमें प्रगतिशीलता पैदा हुयी। ऐसी स्थिति में निराला और नवगीत में निकटता का संघात सहज है। ''भले ही निराला में अद्यतन नवगीत का रूप न मिले, पर जब भी उसकी परम्परा को खोजा जायेगा तो वह 'स्नेह निर्झर बह गया है', 'बांधों न नाव इस ठाँव बंधु', 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ', 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है', जैसे गीतों में मिलेगी।''119 जिन सामाजिक राजनीतिक सन्दर्भों में निराला की काव्य-चेतना 'लोक संवेदना' या 'मध्यवर्गीय' चेतना की अभिव्यक्ति नवगीत की वस्तुनिष्ठता के साथ

करने में समर्थ होती है तथा आगे चल कर समूची हिन्दी काव्यधारा के प्रवाह में एक नया यथार्थवादी मोड़ आता है, उनकी भी गहरी छानबीन कर लेनी चाहिए।

छायावाद का अंतिम दशक यानी सन् 1930 से 40 तक का कालखंड, एक ऐसा समय है, जबकि देश का राजनीतिक क्षितिज निराशा, असहयोग आन्दोलनों, देशव्यापी हड़तालों और सरकार के दमनचक्र के दावानल से क्षुब्ध था। सामाजिक रुढ़ियों एवं पुरातन मर्यादाओं की मजबूत पकड़ के कारण नयी पाश्चात्य चेतना से अनुप्राणित हुआ। कवि-मन भीतर ही भीतर घुटन और पीड़ा का तीव्र अहसास कर रहा था। धार्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि से उसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंद के विचार उद्वेलित कर रहे थे। विचारों के इस आलोक में यह कवि चाहते कि रूढ़ियाँ समाप्तहों और एक नवीन संस्कृति की प्रतिष्ठा। फलतः उनका स्वर विद्रोही हो गया था और मन में सदैव व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के उदात विचारों की उमड़-घुमड़ होती रहती थी। इस सारी परिवर्तित मानसिकता ने अपने आप तत्कालीन साहित्य और काव्यधारा को एक नया मोड़ दिया। यहाँ आकर कविता छायावाद के घेरे को तोड़ नये क्षितिज तलाश ने के लिए आगे बढ़ने लगी थी। सामाजिक घुटन, अंसतोष और आर्थिक विपन्नता के उस वातावरण में रूसी साम्यवाद ने भी भारतीय राजनीति का द्वार खटखटाना प्रारंभ कर दिया था। सन् 1927 ई. में पंडित जवाहरलाल नेहरू रूस-यात्रा करते हैं, जिसका प्रभाव यह हुआ की सन् 1929 ई. में उन्हीं के नेतृत्व में समाजवादी मंच की स्थापना होती है। इस तरह गांधीवाद के साथ अक्टूबर क्रांति (1917) की ये झंझाएँ भारत ने भी ब्रिटिश साम्राज्यशाही के वट-वृक्ष को झकझोरने के लिए कटिबद्ध होती नजर आने लगती है। श्री विजय शंकर मल्ल के मतानुसार सन 1927 में ही भारत में मार्क्सवाद के सिद्धांतों के अनुसार कुछ युवकों ने एक कम्युनिष्ट दल बना लिया जिसकी नीति रूस के संकेतों पर निर्धारित होती है। धीरे-धीरे इसकी व्याप्ति बढ़ती है और नैतिक चेतना जन्म लेती है। 'अखिल भारतीय किसान-सभा' तथा 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन' जैसी संस्थाए अस्तित्व में आती है जो मजदूरों और किसानों के हितों की रक्षा के लिए व्यापक पैमाने पर आंदोलन करती है। अभिप्राय यही है कि साम्यवाद के इस नये दर्शन के गृह-प्रवेश के साथ ही देश के सामाजिक-राजनैतिक जीवन पर नये हवा-पानी का असर तेजी से होने लगा और

चलकर सन् 1936 ई. में प्रगतिवाद के रूप में जिसकी साहित्यिक परिणति हुयी।

इस बदली हुयी फिज़ा ने छायावादी कविता के बुलन्द गढ़ को जीर्ण कर दिया तथा उसकी मजबूत दीवारों में दरारें पैदा कर दी। परिणाम यह हुआ की उस पर बनें वायवी रोमान के मनोरम कंगूरे और आदर्श शिखर देखते-देखते ढहने लगे और वह समय की अपेक्षा के अनुकूल पथ पर आगे बढ़ने के लिए रास्ता खोजने लगी। वह यहाँ आकर स्पष्ट रूप से तीन प्रमुख धाराओं में विभाजित हो जाती है। पहली है- मानवतावादी धारा जिससे अनुप्राणित रचनाों के कुछ नमुने निराला के आरंभिक संग्रह 'परिमल' (1929) में देखनें को मिलते हैं। इस संग्रह में उनकी प्रसिद्ध सामाजिक कविताएँ 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर' आदि है, जिनमें उनकी करुणा और सहानुभूति की भावनाएँ अभिव्यक्त हुयी है। दूसरी है, व्यक्तिवादी काव्यधारा। इसके कवियों का भावबोध भी छायावादी कवियों की तरह रोमान्टिक ही था, पर विषय के प्रति 'एप्रोच' और भाषा के स्तर पर ये निश्चय ही उनसे अलग पड़ते हैं। इनकी अभिव्यक्ति में बिम्ब, प्रतिक और अलंकारों के प्रति विशेष आसक्ति न हो कर एकदम ऋजुता देखने को मिलती है। भाषा का अत्यंत ही सहज-सरल रूप इन्होंने अपनाया जिसे हम जनभाषा भी कह सकते हैं। इनकी गीत-कविताएँ न रहस्यानुभूति है, न किसी प्रकार का तत्व-चिंतन, वहाँ तो सीधी-सरल जनबोली भाषा में सांसारिक धरातल पर अपने सुख-दुःख और दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति है। यहाँ कवि उस अदृश्य, वायवी लोक को त्याग कर सीधे धरती से जुड़ कर अपनी-अनुभूतियों को अभिधात्मक स्वर देने लगा। इस तरह यह कविता किसी विशिष्ट वर्ग तक सीमित न होकर जनता के बीच पहुँच गयी। यहीं आकर यह धारा छायावादी कविता से पृथक होती है। भगवती चरण वर्मा, बच्चन, नरेन्द्रशर्मा आदि इसी धारा के कवि हैं, सन् 1930 - 35 के काल के जिस सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में यह गीतधारा पनप कर पोषित हो रही थी उसी में एक तीसरी प्रगतिवादी काव्यधारा ने भी अंकुरित होकर आगे कूच किया। पर जैसा कि हम जानते हैं, इन दोनों काव्य-रूपों की अपनी अलग-अलग पहिचान है। प्रगतिवादी कविता में जो विद्रोह, अनास्था और असंतोष का स्वर था उसे तो इस काव्यधारा ने अपना लिया, पर उस में वो स्वाभाविकता का स्वर था, उससे इसने अपने को दूर रखने की कोशिस की अथवा उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। दूसरी एक बात और थी कि

उसकी ओर ध्यान देने का अर्थ होता अपनी प्रेम और व्यथा की मूल जमीन से दूर हटना और दूसरी की अपेक्षा के अनुरूप अपने को ढालना या व्यक्त करना। जैसा कि कहा गया है, इनका कोई विशिष्ट तत्वचिंतन तो था नहीं, इन्हें गाना था और छायावादी स्वरों की तमाम सीमाओं के पार जा कर गाना था। जिससे और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इन्होंने तो अपनी अन्तर-आत्मा की आवाज के संकेत पर गाया है। इनका सहज विश्वास था कि गाना या गुनगुनाना मनुष्य का एक प्रकृति-प्रदत्त गुण है। वह कहीं भी रह कर, किसी भी तरह से गा सकता है, उसके लिए छायावादी होने की आवश्यकता नहीं। बच्चन जी के इस कथन में मुक्तगान का समर्थन है। ऐसी स्थिति में इन कवियों ने न केवल प्रगितवादी धारा से अपने को बचाया, बल्कि इनके लिए अपनी समकालीन एक अन्य राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में भी कोई आकर्षण नहीं था।

पर इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इन्होंने प्रेम, सौन्दर्य, हर्ष, विषाद आदि के अलावा दूसरी ओर देखा ही नहीं। यह एक दीगर बात है कि इनके रचना संसार के ज्यादातर चित्र रोमान्सवादी हैं तथा जिसके कारण उसका दायरा युगानुभूति के विस्तृत संदर्भ में अधिकाधिक छोटा हो गया है और इसे पुनरावर्तन, अलौकिकता और बासीपन का शिकार हो जाना पड़ा है। पर इस धारा के कवियों ने.... ''ऐसी कृतियाँ भी दी हैं जिमें प्रमुख रूप से सामाजिक स्वर मुखर हुआ है- प्रगतिवादी कविताका सा विद्रोह ध्वनित हुआ है, जैसे बच्चन के ''बंगाल का काल'', नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशस्य', अंचल की 'किरणबेला', शंभुनाथ सिंह के 'मनवन्तर' आदि में इन कवियों में लक्षित होनेवाला विद्रोह का स्वर व्यक्तिगत अस्वीकृति तथा सामाजिक असंतोष दोनों रूपों में हैं।''120 यह पर स्वर इनका नहीं था और न ही इन कविताओं को इन कवियों को प्रतिनिधि कविताएँ कहा जा सकता है। ये कवि इस क्षेत्र में अधिक समय तक टिक नहीं पाए और शीघ्र ही अपने चिर-परिचित क्षेत्रों की ओर लौट गये। हाँ, इथना अवश्य कहा जा सकता है, कि... ''वैयक्तिकता और भाना से ओतप्रोत होते हुये भी इन कवियों में सामाजिक चेतना की लौ भी आदि से अंत तक जलती रही है।''121 श्री हरिवंश राय बच्चन इस धारा के ऐसे गीत कवि हैं जिनके बारे में कह सकते हैं कि उन्होंने गीत-धारा को नया रूप देने का प्रयत्न किया। भाषा की सादगी उनमें है ही, पर अपने गीतों में लोक-धुनों का प्रयोग

करके उन्होंने अपनी धारा के समकालीन कवियों से अपने को पृथक भी कर लिया। जब हम बच्चन में इनके प्रयोग देखते हैं तो हमें सहज ही भारतेन्दु से लेकर निराला तक के गीतों में प्रयुक्त लोकधुनों का स्मरण हो आता है; इन प्रयोगों में सक्रिय रहने वाली वैचारिक पृष्ठभूमि में समानता होनी चाहिए। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि व्यक्तिवादी गीत-काव्यधारा के गीत विधा में जो नवीनता आयी, वह वस्तु और शिल्प के आधार पर उतनी नहीं है, जिनती की भाषिक स्तर पर देखने को मिलती है। छंदो, तुकों एवं रुढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह की मात्रा भी यहाँ विशेष रूप से बच्चन में हीपायी जाती है। इसी समय में दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के माध्यम से सांस्कृतिक-राष्ट्रीय काव्यधारा भी प्रवाहित हो रही थी। इन कवियों ने देश भक्ति की अनेक रचनाओं के साथ क्रांति वे गीत भी गाए हैं, जिनमें दीन-हीन समाज की दुर्दशा के प्रति इनकी शुब्ध आक्रोशमयी वाणी सर्वत्र सुनायी पड़ती है।

**प्रगतिवाद और गीत :-**

''जिस प्रगतिवादी दर्शन और काव्यान्दोलन से व्यक्तिवादी गीत-काव्यधारा आशिक रूप से हाथ मिला सकी उसका आविर्भाव हमारे यहाँ तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में ही होने के संकेत मिल गये थे जिसका संकेत पूर्व में किया जा चुका है। इस आन्दोलन के मूल में साहित्य के संबोधन के स्वर को बदलने का संकल्प और उसे जन-साधारण की ओर मोड़ने का प्रयत्न था।'' वही दृष्टि अपने से ठीक पहले से साहित्य से अलग करती है। निराला ने अपनी परवर्ती रचनाओं में कठोर यथार्थ और जीवन-संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर जिस प्रगतिशीलता का परिचय दिया था तथा जीस धारा में परिस्थितियों के कारण अवरोध आ गया था, वही अब प्रगतिवाद के माध्यम से पूरी तरह गतिशील होकर आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध होती नजर आने लगी थी। वास्तव में इस युग में बढ़ती हुयी जटिलता की परिस्थितियों के कारण, प्रगति और अवरोध की कश्मकश इस हद पहुँच गयी थी कविता तो एक बार फिर भक्तियुग या भारतेन्दु युग की भाँति आन्दोलन की शक्ति से अनुप्राणित करना आवश्यक हो गया। यही प्रगतिशील आन्दोलन की पृष्ठभूमि थी। यहीं आकर पंतजी के दृष्टिकोण में भी फर्क आ गया था और 'दिनकर' जी के अनुसार 'उनके समकालीन अन्य कवियों ने 'सुन्दर होने से पहेल स्पष्ट' की

प्रवृत्ति में आश्चर्यजनक समानता थी। उनका यह कथन प्रेमचंद की इस घोषणा से जुड़ता है कि 'हमें सुन्दरता की कसौटी बदल देनी है। 'सन् 1930 के आसपास दिनकर जी यह अनुभव करते हैं कि जनमत का प्रभाव यत्किंचित सुचारू रुप से कवियों पर पड़ रहा है। यह प्रगतिवाद की पहचान ही है जिसकी ओर वे संकेत कर रहे हैं। वस्तुतः प्रगतिवाद काव्य के उद्भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक सिद्ध हुयीही थी, छायावाद की जीवन-शून्य होती हुयी व्यक्तिवादी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी।

सन् 1935 -36 के आसपास हिन्दी में प्रगतिवाद का आरम्भ माना जाता है। सन् 1936 में सबसे पहला अधिवेशन 'प्रगतिशील लेखन संघ' का प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ जिसमें प्रेमचन्द साहित्य एवं कला का सम्बन्ध सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हुए उसके लिए एक नयी दिशा की ओर संकेत करते हैं। वे साहित्य के कल्पनाशीलता और अदृश्य लोक की वस्तु न मानकर, अपने आसपास के बिखरे जीवन की सांसो की अभिव्यक्ति का एक कारगार शस्त्र मानते हैं। अपने भाषण में उन्होंने कहा, हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक है जिनसे हमारे हृदयों पर नैराश्य छा जाए। हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का सन्दर्भ हो। हमारे पथ में अहम्वाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर लेजाती है। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च साहित्य चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो। जीवन की सचाईयों का प्रकाश हो जो हम में गति, संघर्ष और बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं। प्रेमचन्द का यह कथन अफने समय की आवाज है। साहित्याकारों के वास्तविक दायीत्व का द्योतक है और रचना की सार्थकता के लिए एक मंत्र है। उनका यह निर्देश आगामी साहित्य रूपों के लिए एक तरह से 'मैनीफेस्टो' सिद्ध हुआ इस घोषणा ने छायावादी कवियों को भी प्रभावित किया। 'रुपाभ' (सं. सुमित्रानंदन पंत एवं नरेन्द्र शर्मा) का पंत द्वारा लिखित संपादकीय इसका प्रमाण है। वे लिखते हैं ''इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा-आकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के

उस नग्न रूप से सहम गयी हैं। अतएव इस युग की कल्पना स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ता है।''[122] पंतजी के प्रतिपादन उनके परवर्ती काव्य-सग्रंह 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में देखा जा सकता है।

इसके बाद तो छायावादी एवं व्यक्तिवादी काव्य-बोध की धाराएँ क्रमशः सुखती जाती है और उक्त नये चिंतन से सम्पन्न अनेक युग-सापेक्ष्य रचनाएँ एवं कृतियाँ सामने आती गयी।

समीक्षकों एवं रचनाकारों ने प्रगतिवाद को प्रायः छायावाद से पृथक न मानकर उसे उसकी एक विकसित अवस्था माना है। उसका कारण यह है कि प्रगतिवादी कविता ने जिस सामाजिक यथार्थ या जन-जीवन के प्रति अपना गहरा लगाव बताया उसके संकेत छायावाद के प्रायः सभी कवियों में मिल जाते हैं। हम निरालाकी प्रगतिशीलता का उल्लेख पूर्व में कर ही गये हैं। अन्य कवि भी परिस्थितियों के दबाव में काव्य की दिशा बदलने की विवशता का अनुभव कर रहे थे। डॉ. विजयशंकर मल्ल ने इस तथ्य की ओर संकते करते लिखा है- ''छायावाद में लोकोपयोगिता, जागृति, युगधर्म, सापेक्षता तथा विद्रोह के जो तत्व थे (जो उसके व्यक्तिवाद और पलायन के स्वरों के कारण प्रच्छन्न तथा लोक-रूढ़ियों के समुचित निर्माण के अभाव में अनदेखे रह गये थे) वह परवर्ती काल में विश्व की बदली हुयी परिस्थितियों के आलोक में स्वंय छायावादी कवियों के द्वारा एक नये उन्मेष के साथ उभरे। यह समय था जब मार्क्सवादी दर्शन का आधार ले कर समाज और इतिहास के प्रति नए दृष्टिकोण का विकास शुरु हुआ। प्रस्तुत संदर्भ में जहाँ मार्क्सवादी देन को भुलाना होगा, वहीं यह मान लेना भी अनुचित होगा की इस उन्मेष का काव्य मार्क्सवाद की कोरी अनुगुंज भर है। असल में यह कहना अधिक उचित होगा की प्रगित के जो तत्व आधुनिक साहित्य के आरम्भ से ही सक्रिय थे, वह इस युग में ऐतिहासिक कारणों से विशालतर वैचारिक परिप्रेक्ष्य में क्रियाशील हो उठे।''[123]

जब हम प्रगतिवादी काव्यधारा में गीत सन्दर्भ में विचार करते हैं तो पता चलता है कि वस्तुतः यहां कविता और गीत में कोई भेद किया ही नहीं जाता था। प्रगतिवाद की सामाजिकता का प्रभाव कविता की तरह उसके गीत रूप पर भी होना स्वाभाविक था। वहभी

यहाँ आकर समाज-जीवन के कठोर यथार्थ की बात करने लगा था। अब उसका विषय कल्पना या नया रोमान्स न रह कर सामान्य जनकी पीड़ा, व्यथा और उसके अभाव हो गए थे। अपनी लोकोन्मुखी दृष्टि के कारण प्रगतिवाद में गीत यहाँ भाषा की दृष्टि से तो सहज ही रहा। वह लोकगीतों की ओर गया, ताकि लय-गंध को लेकर अपने को लोकभोग्य बना सके तथा नए प्रयोगों के माध्यम से अपने को संवार सके।

जहाँ तक गीतों के छंद-विधान का प्रश्न है, प्रगतिवादी कवि का यह विश्वास रहा है कि छंद-लय बद्ध काव्य ही उसे जनता के निकट ले जा सकता है इसलिए वहां यद्यपि छायावादी-युग के बंधे-बंधाये छंद-विधान के प्रति प्रतिक्रिया तो अवश्य हुई, उसे एक भिन्न रूप देने का आग्रह भी वहाँ सदैव बना रहा, पर इस प्रयत्न में कवियों ने कभी असंतुलित कदम नहीं उठाए; प्रगतिवादी रचनाकार की यह दृढ़ धारणा रही है कि गाने का गुण मनुष्य को जन्मजात प्राप्त हुआ है अतः जिस रचना को वह गुनगुना सकता है, गा सकता है, वह उसी को पढ़ेगा और अपने संस्कारों के बल पर उसका आनंद उठा सकता है। कविवर दिनकर ने लिखा है- ''छंद विधान के मूल में जन-रूचि ही रही होनी चाहिए। वैदिक ऋषियों ने अपने मंत्रो में इसलिए छंद-विधान को महत्व दिया था उनकी रचनाएँ सदा-सदा के लिए कंठ में बस जायें। जिस दिन आदि कवि के मुँह से श्लोक निकला था उसी दिन इस बात का प्रमाण मिल गया था कि जब मनुष्य का हृदय किसी असाधारण आवेग से बाहर निकलना चाहता है, तब उसकी भावना गेय हो उठती है। मेरे जानमें छन्द काव्य-कला का सहायक नहीं, बल्कि उसका स्वाभाविक मार्ग है।''[124] आगे चलकर मध्यकाल का जितना भी काव्य-साहित्य हम देखते हैं वह आज भी जो लोककण्ठों में बसा हुआ है, प्रगतिवाद के समर्थकों से यह तथ्य छिपा हुआ नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने छान्दमुक्त कविताओं को न अपनाकर छंदाश्रित रचनाओं की ही हिमायत की। यहाँ गीतों के छंदों में जो प्रयोग भी हुए हैं उसका आधार लोकगीत है। इस प्रकार प्रगतिवाद में पहुँचकर गीत लोकमय होनें की ओर तेजी सी बढ़ा। यहां गीतों में व्यंग्य का पुनः प्रवेश होता है। भारतेन्दु काल से चला आने वाला यह व्यंग्य छायावाद और व्यक्तिवादी धाराओं में आकर एकदम विस्मृत कर दिया गया था। यह वह पुनः उभरता है। प्रगतिवाद और गीत विद्या के सम्बन्धों की ओर निर्देश करते हुए सुश्री समीक्षक एवं सर्जक डॉ. रामदरस मिश्र

ने लिखा है- ''प्रगतिवाद ने गीतों को नई दिशा दी, उसका सामाजिक स्तर गीतों में उभरा, गीत व्यक्तिवादी वेदना, निराशा और हारजीत के गायक न रहकर सामाजिक जीवन के गायक बने। लगा जैसे घुटन से भरे वातावरण में ताजा हवाएँ आई हों, उजास फूटा हो। लोक-जीवन की हरियाली और रस गीतों में मुखर होने लगे। प्रेम और सौन्दर्य की कविताओं में भी एक खुलापन दिखा, जमीन के प्रति प्यार उभरा।''[125] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद में गीत को एक सशक्त एवं सक्षम विद्या मानकर उसे विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से युगारूप ढालने के प्रयास हुए। कविता की तरह यहां गीत का भी अधिकाधिक समाजीकरण होता गया जिसके कारण वह अपने पूर्व प्रचलित एक निश्चित रूद्ध दायरे से मुक्त होकर व्यापकता ग्रहण करता है। जीवन और साहित्य में जो भेदक रेखाएँ खड़ी कर दी गई थी, वे यहां आकर समाप्त हो गई। भाषा का अभिजात यहाँ आकर खत्म हो गया, लोकगीतों के सम्पर्क से नवीन लय छंदों के प्रयोग के प्रति सहज विश्वास सक्रिय रहा और अलंकारों के प्रति मोह भंग पैदा हुआ। यहाँ वह सादगी, संक्षिप्तता, प्रभाव की तीव्रता और आम आदमी से सम्बद्ध होता पाया जाता है। प्रगतिवादी गीतकारों में श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री त्रिलोचन शास्त्री, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' के नाम सदैव स्मरण किये जायेंगे।

**प्रगोयवाद और गीत**

सन् 1943 में प्रथम तार सप्तक के प्रकाशन के साथ हिंदी में प्रयोगवादी काव्-परम्परा का प्रांरभ माना गया है। सन 1950-51 के आसपास पहुँच कर यही प्रयोगवादी कविता नई कविता में परिणत हो जाती है। पहला सप्तक के बाद तीन सप्तक और प्रकाश में आ चुके हैं जो नई कविता और साठोत्तरी कविता का प्रतिनिधित्व करते है।

इस कालखण्ड में गीत-विधा को नई तरह के कड़वे-मीठे अनुभवों से गुजरना पड़ा है। प्रारंभिक तीन-दशकों के प्रायः सभी कवियों ने एक ओर जहाँ समय-समय पर गीत लिखे हैं, वहीं अपवाद रूप से दो-एक रचनाकारों को छोड़ दें तो शेष ने इस विधा का विरोध भी किया। इस तरह गीत को यहाँ एक विरोधाभास की स्थिति का सामना करना पड़ात है। फिर भी यह यात्रा साथ-साथ चलती रही। विरोध का यह स्वर छठे दशक में जाकर काफी मुखर हो गया, जिसके कारण गीत यात्रियों कों मजबूर होकर अपना अलग रास्ता अपनाना पड़ा।

यद्यपि प्रयोगवाद का गीत रोमांस (छायावाद), व्यक्तिपरकता (उत्तर छायावादी काल) और सामाजिकता (प्रगतिवाद) का समन्वित का समन्वित रूप लिए हुए है, तथापि यहाँ आकर वह कई दृष्टियों से नई जमीन तोड़ता हुआ पाया जाता है। स्वयं अज्ञेय (सम्पादक-तारसप्तक) उन कवियों में आते है, जो कविता के साथ-साथ गीतों को भी नई दिशा देने के लिए बराबर सचेष्ट रहे हैं। उनके काव्य संग्रह 'इत्यलम्' (1946) के गीतों का नयापन पाठकों को मोहित किये बगैर नहीं रहता है। डॉ. शंभूनाथसिंह ने इस संग्रह के गीतों को तीन कोटियों में बाँटते हुए लिखा है- ''सभी गीतों की विशेषता यह है कि उनमें छायावादी भावभूमि और भाषा का परित्याग कर दिया है। प्रेम सम्बन्धों की सीधी अभिव्यक्ति, संवेदनाओं की अछूती दिशा और तब तक अप्रयुक्त नवीन शब्दावली के कारण ही ये गीत नवगीत हैं।''[126] लोकगीतों के माध्यम से गीतों में जो नये मार्मिक प्रयोग करने के प्रति विशेष आग्रह प्रारंभ में ही पाया जाता था, अज्ञेय भी उससे वंचित नहीं रह सके हैं। उनकी ''पानी बरसा'' (इत्यलम्) नामक कविता में यह प्रभाव स्पष्ट है। उनके परवर्ती काव्य-संग्रहों में भी नयी तरह के गीतों के नमूने पाये जाते हैं। हम देखते हैं कि अज्ञेय से लेकर सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (तीसरा सप्तक) तक अधिकतर सप्तकीय कवियों ने गीत लिखे हैं और सप्तकों एवं सप्तकों के बाहर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में वें प्रकाशित भी होते रहे। उन्होंने उसे प्रगतिवाद की तुलना में ताजा और टटका रूप देकर भाव, अभिव्यंजना, छंदविधान, संगीतात्मकता की दृष्टि से व्यापकता भी प्रदान की, फिर भी यहाँ केवल गिरिजाकुमार माथुर ओर केदारनाथसिंह ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने गीत-विधा को गंभीरता से लिया और इसकी क्षमताओं के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। शेष कवियों ने या तो इसके प्रति मौन अपनाया या फिर इसके प्रति उपेक्षा की मुद्रा। जैसा कि हम प्रारंभ में कह आये हैं, अज्ञेय स्वयं जहाँ अत्यन्त ही भावपव्रण और नई शैली के गीत लिखते रहे, वही उन्होंने इस गतानुगतिक रचना घोषित करके, इसके प्रति अपना अनमनापन भी व्यक्त किया। विरोध का यह झण्डा आगे चलकर अब उन हाथों में पहुँच गया जिन्हें न छंद का ज्ञान था और न मुक्तछंद और छन्दमुक्त कविता के बीच की सुक्ष्म भेदक रेखा का अहसास। तो गीत को अनेक तरह के बेहूदे और अर्थहीन आक्षेपों का शिकार हो जाना पड़ा।

हम प्रकार अज्ञेय जहाँ प्रयोगवादी कवियों में नयागीत लिखने में अग्रणी हैं, वहीं वे गीत

विरोध के सूत्रधार भी हैं। यहीं कारण है कि पांचवे दशक के सप्तकीय कवि गीत को लेकर मौन रहते हैं। वे उसकी रचना तो करते है, पर उसकी विधा का लेकर ऐसा कुछ कहना नहीं चाहते जिससे गीत विधा प्रश्नांकित हो या उसके प्रति अज्ञेय द्वारा व्यक्त अनमनेपन का समर्थन ही हो, इसका एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि गीत और कविता एक दशक में सहयात्री बने रहे। पर यह यात्रा लम्बे समय तक नहीं चल सकी। प्रयोगवादी की अपेक्षा नई कविता वालों ने गीत का खुलकर विरोध किया और तीसरे सप्तक (1949) में प्रकाशन तक तो इस विरोध में इतनी तेजी आ गई कि गीत-विधा को उसका उत्तर दने के लिए तैयार होना पड़ा। विचित्र बात यह हुई कि इस विरोधी यज्ञ में लोग भी आहुतियाँ देने में पीछे नहीं रहे, जो गीत (कविता के साथ) भी लिख रहे थे। स्थिति की ओर संकेत करते हुए श्री राजेन्द्रनाथ गौतम ने लिखा है- ''प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नयी कविता के कवियों के रचनाकाल का प्रायः प्रथम चरण ही गीत से जुड़ा रहा है, क्योकिं क्रांतिकारिणी प्रवृत्ति के यौवनकाल में तों ये इनमें आधुनिक हो चुके थे कि जीवन के अन्य विश्वासों की तरह उन्होंने अपने रचनाकार के लयात्मक विश्वासों की भी हत्या कर दी। उन्हें लगने लगा था कि गीत के साथ जुड़कर तो वे पिछड़ जायेगे।''127

हवाओं के साथ बहना जहाँ ज्यादा सुविधाजनक होता है, वहीं यह प्रवृत्ति अपने को विशिष्ट बनाये रखने से भी अहम् भूमिका निभाती है। ऐसे लोगों को अपने दोहरे व्यक्तित्य के प्रति कोई शिकायत नहीं होती। हम यह कह सकते हैं कि प्रयोगवादी के प्रारंभिक दशक में गीत-विधा को ऐसे रचनाकारों के कारण एक विरोधाभास की स्थिति से गुजरना पड़ा। प्रयोगवादी कवि चूंकि पूरी तरह परंपरा विरोधी थे अतः उन्होंने कविता और गीत दोनों ही क्षेत्रों में परंपरा का भजन किया और इनमें ताजगी और टटकापन भरते रहे। वस्तुतः यह प्रयोगवाद ही था जिसने आज के नवगीत को अंकुरित और पल्लवित होने के लिए पूरा पवन, प्रकाश और आकाश दिया। सन् 50 के बाद जिन कवियों ने गीत रचना कर इस विधा को गतिशीलताः प्रदान की उनमें नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ, अग्रवाल, शमशेर, भारतभूषण अग्रवाल, शिवमंगलसिंह सुमन, रामविलास शर्मा, नरेश महेता, धर्मवीर भारती एवं भवानीप्रसाद मिश्र के नाम उल्लेखनीय है। इनमें अधिकतर कवियों के गीतों में लोक संवेंदनात्मक जीवन्तथा तथा 'वस्तुन्मुखी दृष्टि' देखने को मिलती है जो आज के नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ है। परन्तु

केदारनाथ अग्रवाल और नरेश मेहता के कुछ गीतों के अलावा इन किसी भी कवि के गीतों की नवगीत की स्थिति में नहीं माना गया है।

सन् 1950-51 के बाद प्रयोगवाद का यह शकट नई कविता के क्षेत्र में प्रवेश करता है, जिस की समय-सीमा मोटे तौर पर सन् 1960 तक मानी जा सकती है, क्योंकि उसके बाद ''साठोत्तरी कविता'' शुरू हो जाती है। हम पूर्व में यह संकेत कर चुके हैं कि नई कविता के काल में गीत के विरोध में काफी युयुत्सु मुद्राएँ देखने को मिलती है। जो सबसे बड़ा आक्षेप इस काल में गीत पर लगाया गया वह यह था कि गीत आज अप्रसंगिक हो गया है और उसमें अपने समकालीन या आधुनिक जीवनबोध को अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं है। वह घिसापिटा और बासीपन लिए हुए है। विरोध का यह कोलाहल इतना तेज था कि अब गीत के दिन लद गये हैं। पर कई गीतकार इस बीच पूरी निष्ठापूर्वक रचनात्मक कार्य में लगे रहे और उन आक्षेपों के उत्तर अपने कृतित्व से देते रहे। इन आक्षेपों की आंच में गीत अपने को तपाता-जांचता रहा तथा अपने को खरे वास्तविक रूप में ढ़ालता रहा। इसी आधार पर सन् 1948-57 तक के गीत-रचनाकाल को श्री रामनरेश पाठक ने अघोषित नवगीत-दशक की संज्ञा देते हुए लिखा है, ''प्रतीक'' (सम्पा. स. ही. वात्स्यायन) के नवें अंक ''शरद''-1948 में पूर्ववर्ती गीत से अघोषित नवगीत का टकराव दिखता है। अपने लेख में उन्होंने कई प्रयोगवादी एवं नई कविता के कवियों के अलावा उन कवियों के रचना संसार की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है जो इन खेमों के बहार रहकर गीत को नवगीत की दिशा में आगे ले जाने में विशेष रूप से सक्रिय थे। ऐसे नामों में राजेन्द्रप्रसादसिंह, रामदरश मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, ठाकुरप्रसाद सिंह, शंभूनाथसिंह, रविन्द्र भ्रमर, नरेश महेता, जगदीश गुप्ता, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सारी स्थिति के निष्कर्ष रूप में उनका यह कथन उचित ही है- ''अघोषित'' तौर पर नवगीत के आविर्भाव का उपक्रम पांचवे दशक के अंतिम वर्षो में आरंभ हुआ जो छठे दशक के आरंभ में मध्य तक के गीत रचनाओं में स्पष्ट रूप-गुणत्व कि दृष्टि से भी प्रकट हो चुका था। छठे दशक के अंतिम चार वर्षो में प्रकाशित कई संकलनों और गीत-कृतियों में पूर्व-प्रचलित गीत स्वभाव को पुरे तौर पर बदलकर नवगीत यानी सिर्फ संकलनों और गीत-कृतियों में पूर्व-प्रचलित गीत स्वभाव को पूरे तौर पर बदल कर नवगीत

यानी सिर्फ नयी पीढ़ी का ही गीत नहीं, रुचि-स्वाद और हल-अन्दाज, कोण-त्वरा और मानी तेवर तथा भाषा संरचना और नीयत-सरोकार के भी नये गठन से एवं आधुनिक दृष्टि से सम्पन्न सामाजिक सद्शता का नवगीत साबित हुआ। नवगीत के इस अघोषित दशक में गीत-विधा से सम्बद्ध जो कतिपय बातें हमारा ध्यान आकर्षित करती है- उनमें है 'कविताएँ -54' का प्रकाशन (1955)। इसके सम्पादक अजितकुमार और देवीशंकर अवस्थी ने सन् 53-54 की पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ चुनिंदा रचनाओं को लेकर यह संकलन तैयार किया था। इस में नये तेवर के दो प्रकार के गीत-रूप उभर कर सामने आये थे। इन में पहला प्रकार था व्यक्तव्य प्रधान प्रगतिशील, संक्रमणशील सांस्कृतिक गीतों का। पहले प्रकार में केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और रामदरश मिश्र के गीतों का समावेश किया गया था और दूसरे में प्रमुख रूप से वीरेन्द्र मिश्र के।

इसी दृष्टि से दूसरी महत्वपूर्ण घटना से सन् 1954-56 के ''नयी कविता'' पत्रिका के अंक जिनमें ''कांगड़े'' की छोरियाँ और ''यह दीप'' अकेला ('अज्ञेय') मेरी वामी गैरिक बहना तथा ''तीन-पूजा गीत'' (धर्मवीर 'भारती'), ''पीले फूल कनेर के'' (श्री नरेश मेहता) गीतों के साथ शंभूनाथसिंह के गीत छपे जिनमें लोकगीतिक संवेदना और व्यक्तित्व-बोध की अभिव्यक्ति मिली थी। ये सारे गीत कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अपने में एक नयापन समाए हुए थे। ''इस सन्दर्भ में तीसरी महत्व की बात है सन् 55-57 की अवधि में गीतकार राजेन्द्र प्रसाद सिंह के काव्य-संग्रह 'मादिनी' (1955) और दिग्वष् (1956) का प्रकाशित होना। इन संग्रहों में नवीन संभावनाओं से भरे आधुनिक भावबोध के संवाहक कई गीत मिल जाते है। इन्ही वर्षो में 'आधार ' का कवितांक - 56, 'समवेत' का प्रथमांक-57 तथा 'कविताएँ'-57 (सम्पादक-चन्द्रदेव सिंह) के संकलन प्रकाश में आये, जो नये गीतों की दृष्टि से उल्लेखनीय माने जायेंगे। इनमें भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, राजेन्द्रप्रसाद सिंह, देवप्रकाश गुप्त और बंशीधर पण्डा के गीतों की ताजगी और नयापन पाठकों का ध्यान खींचते हैं।

इस तरह इस दशक का गीत 'नवगीत', आधुनिक गीत, ''आज का गीत'' आदि नामों से अपनी पहचान बनाने में लगा था तभी 1958 में नयेपन की प्रक्रिया से गुजरते इस तरह के गीतों का संकलन ''गीतागिंनी'' लेकर श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह सामने आते हैं। गीत जो

अपने लिए नये नाम की तलाश में भटक रहा था, यहाँ आकर सर्वप्रथम ''नवगीत'' नाम से अभिहित होता है। राजेन्द्रप्रसादसिंह ने अपने सम्पादकीय में लिखा ''नयी कविता'' के कृतित्व से युक्त या वियुक्त भी ऐसे ध्यातव्य कवियों का अभाव नहीं है, जो मानव जीवन में ऊँचे और गहरे, किंतु सहज नवीन अनुभव की अनेकता, रमणीयता, मार्मिकता विच्छिति और मांगलिकता को अपने विकसित गीतों में सहज-संवार कर नयी टेकनीक से हार्दिक परिवेश की नई विशेषताओं का प्रकाशन कर रहे हैं। प्रगति और विकास की दृष्टि से उनरचनाकारों का बहुत मूल्य है, जिनमें नयी कविता के प्रगीत का पूरक बनकर-नवगीत का विकास जन्म ले रहा है। ''गीतांगिनी'' में अन्ततः मतवांदो को परंपरा से और उपविधा माने जाने की थोपी हुई हीनता से गीता का आजन्म संघर्ष हुआ और वह मुक्त होकर, एक सम्पूर्ण विधा का सांगोपाग, स्वायत्तता प्राप्त कर नवगीत के नाम से पहली बार प्रतिष्ठित हुआ, जिस के मूलभूत तत्वों का, अब तक विभिन्न आयामों, दिशाओं और गुणात्मक रूपान्तरो में विकास हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा।''[128]

यह भी एक संयोग ही है इसी वर्ष (1958) वीरेन्द्र मिश्र का दूसरा गीत-संग्रह ''लेखनी बेला'' प्रकाशित हुआ। जिस में ऐसे लगभग तीस नये गीत मिल जाते हैं जो अपनी संक्षिपता, संगीतात्मकता, सांस्कृतिक रूप एवं छंद वैशिष्ट्य की दृष्टि से रेकांकित किये जा सके हैं। इस दशक का अंत होता है ठाकुरप्रसादसिंह की बहुचर्चित नवगीत कृति ''वंशी और मादल'' से। जिसके गीतों के नयेपन का हिन्दी जगत में सर्वत्र स्वागत हुआ। छठे दशक की यह यात्रा नवगीत के लिए जितनी संघर्षमय रही, उतनी ही उसके निखार-संसार की दृष्टि से उपादेय भी सिद्ध हुई। यहाँ आकर गीत में अब आत्मविश्वास पैदा हो गया था और उसका आगे बढ़ता प्रत्येक कदम काफी दृढ़ और सधा हुआ था। नयी कविता के लोग इसका विरोध करने में जुटे हुए थे, उनके लिए भी अब अधिक हाथ-पैर मारनें की जगह नहीं रही थी और उन्हें इसे नयी कविता की पूरक विधा स्वीकार करने की तैयारी बतानी पड़ी। जो भी थोड़ा बहुत विरोध था उसे सिर्फ विरोध के लिए विरोध कहा जाना चाहिए। श्री मुक्तिबोध ने इस स्थिति को सही रूप में पहचाना था। इसीलिए उन्होंने इस प्रवाह को कोई अहमियत न देकर साफ शब्दों में घोषित किया ''गीत की नयी कविता से विरोध नहीं है।'' न कविता को उसके विरुद्ध

अपने लेख में ''जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि'' के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करते हुए इस बात पर बल दिया ''कि जीवन में नये तत्व आयें न कि काव्यशैली की धारा की समाप्ति हो।''129 उनका यह कथन गीत विरोधी खेमों से रह-रहकर उठने वालें बादलों को छाँठ कर, उसके आसमान को साफ करने में सहायक हुआ। सच पूछा जाये तो गीत को लेकर 'अज्ञेय' और तदनन्तर श्री मुक्तिबोध ने जो कुछ कहा था उसमें नयेपन का आग्रह विशेष रूप से वय्क्त हुआ था। एक ने कहा उसने यतानुगतिक रूप का विरोध कर उसे आधुनिक बोध एवं उसके अनुकूल सर्वथा नवीन रूप-शिल्प से संम्पृक्त करना चाहा तो दूसरे ने ''जड़ीभूत सौन्दर्याभिरूचि'' से अपनी असहमति व्यक्त कर उसके युगानुरूप बदलाव एवं समाजीकरण के कारण उसमें नूतन संभावनाओं के नये वातायन खुलते देखे। श्री अज्ञेय के उक्त कथन का अर्थ नयी कविता वार्दियों के अपने मनमानें ढंग से ग्रहण कर गीत काव्यधारा को समाप्त करने के उद्देश्य से एक जेहाद ही छेड़ दिया। परिणाम स्वरूप स्तर पर खड़े होकर इसका प्रत्युत्तर देना पड़ा।

यद्यपि सातवें दशक के आरंभ मेंही श्री मुक्तिबोध ने गीत और कविता के संघर्ष को सारहीन कहकर उसे समाप्त करने का संकेत कर दिया था, फिर भी नयी कविता वादियों का एक वर्ग गीत के खिलाफ तलवार भांजने से बाज नहीं आया और वह समय-समय पर इस विधा पर बराबर आघात करता रहा। आशय इतना ही है कि गीत-नवगीत को अभी बहुत कुछ सहन करना था। आगे बढ़ने के लिए उसका रास्ता निष्कंटक नही था। श्री चन्द्रदेवसिंह ने इस ओर संकेतकरते हुए लिखा है कि ''वंशी और मादल'' जैसी एक विशिष्ट गीतकृति के प्रकाशर में आने के बावजूद गीत को लेकर नयी कविता के रचनाकारों में दो समूह हो गयेथे जिनमें एक समूह यह मानता था कि गीत का फार्म नये युगबोध की अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं है तथा दूसरा उसमें ही रहे नूतन प्रयोगों की मौखिक प्रशंसा तो करता था, किंतु खुलकर सामने आने में उसे अफने बोध को पुराना और बासी करार दिये जाने का भय था। ''यानी इस समय तक नयी कविता के समर्थक गीत लेखन को हेयवृत्ति से देखते थे। सातवें दशक के नवगीत पर विचार करते हुए डॉ. नन्दकिशोरनन्दन ने लिखा है कि यहां उसे तिहरी लड़ाई लड़नी पड़ी है। पहली उनसे जो गीत-नवगीत को गौण उपेक्षणीय, उपविधा, ग्राम्य और अतिशोभित कहकर केवल नयी कविता को ही आधुनिक युग-बोध की वाहिका मानते थे। दूसरी उन लोगों से जो नयी

कविता-नवगीत के खिलाफ घिसे-पिटे मंच-गीत से यथास्थिति कायम रखने के पक्ष में थे और तीसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जो अनेकान्त मतवाद से ग्रस्त नयी कविता के घेर में ही नवगीत को अन्तर्भुक्त सिद्ध करने पर तुले थे।'' परन्तु यह लड़ाई गीत ने बड़े ही आत्मविश्वास और धैर्यपूर्वक लड़ी। छठे दएक की तुलना में इस दशक का गीत-नवगीत अधिक सम्पन्न और नये तेवर लिए हुए था। अतः उसने अपने विरुद्ध विरोधी खेमें की ओर से उगली जाने वाली आग का जमाकर उत्तर दिया। परन्तु एक बात सदैव ध्यान रखने योग्य है कि नवगीत की ओर से कभी भी आक्रामक एवं प्रत्यवरोधात्मक लड़ाई नहीं लड़ी गई। नवगीत ने उसे होनेवाले हर वार का उत्तर अपने सर्जन के माध्यम से दिया। विवेचन एवं वक्तव्यों की अत्यन्त ही शिष्ट और संतुलित किंतु दृढ़ भाषा में उसने अपनी बात कही। अपने समक्ष मुँङ बाये खड़े संकट का पत्र-पत्रिकाओं, नवगीत संग्रहो एवं समवेत संकलनों के माध्यम से संगठित रूप से उत्तर देता हुआ वह अपनी स्थिति को उत्तरोत्तर मजबूत बनाता गया। लहर बासन्ती, वातायन, ज्योत्सना, कल्पना, ज्ञानोदय, नयीधारा, माध्यम, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान इत्यादि प्रमुख पत्रिकायें हैं, जिन्होंने समय-समय पर स्तंभ, चर्चा-परिचर्चाएँ, रचनाकारों के आत्मकथ्य-वक्तव्य एवं आलेख प्रकाशित कर नवगीत के विरोधियों को सटीक उत्तर दिये। इन पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका नवगीत के ऐतिहासिक विकास में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में स्वीकार की जायेगी। इसी प्रकार आ.... बयान'' (राजेन्द्रप्रसाद सिंह), ''रवीन्द्र भ्रमर के गीत'', ''अविराम चल मधुंवती'', (वीरेन्द्र मिश्र)'जलते शहर में' (उमाशंकर तिवारी), 'गीत बिहग उतरा' तथा 'किरण के पाँव' (रमेश रंजक) एंव ''ओ प्रतिक्षित'' (शांति सुमन) जैसे उल्लेखनीय गीत-संग्रह इस अवधि में प्रकाशित हुए, जिनमें नवगीत अपने पूर्ण विकास के साथ प्रगति की नई मंजिलों की ओर प्रयाण करते देखा जा सकता है। इस अवधि में प्रकाशित नवगीत संमवेत्-संकलन हैं- ''कविता''1964 (सम्पा. ओम प्रभाकर तथा श्री भार्गव), गीत-1 तथा गीत-2 (सं. दिनेश सक्सेना ''दिनेशायन'' तथा भूपेन्द्रकुमार 'स्नेही') एवं पांच जोड़ बांसुरी (सं. चन्द्रद्रेवसिंह)। इन संकलनों में सर्जन के साथ-साथ समीक्षात्मक लेखादि भी है, जो नवगीत को परिभाषित करने से लेकर उसके आधुनिक बोध को व्यक्त करने की क्षमता तक की गंभीर चर्चा से सम्बद्ध है। वस्तुतः ये संकलन एक तरह से प्रयोगवादी एवं नयी कविता वालों की ओर से नवगीत के

खिलाफ लगातार लड़े जा रहे युद्ध के खिलाफ ऐसे बयान हैं जो न केवल सर्जनात्मक स्तर पर, वरन् समीक्षात्मक स्तर पर भी इस विद्या को सार्थकता प्रदान करते हैं। आक्षेपों एवं विवादों के वृत से बाहर निकाल कर उसके उचित मूल्यांकन की ओर हमारा ध्यानाकर्षित करते हैं। इस दशक का नवगीत अपने अस्तित्व के जबरदस्त संघर्ष की आंच में तपकर खरे कंचन की तरह निखरकर सामने आया जिसने अपने रूप-अपरूप में बरबस लोगों को लुभाया। उसमें निहित-सामाजिक-सांस्कृति एवं लोकगंधी रूप की विशुद्ध भारतीयता, उसकी प्रगतिशीलता तथा उसकी आधुनिक बोध को व्यंजित करने की क्षमता नें उसे सहज ही एक नयी विद्या के रूप में स्वीकृति दिलवा दी और विरोध के बादलों को अफने आप उसका आसमान छोड़ देना पड़ा। यहाँ पहुँचकर (नवगीत या नवगीत का आन्दोलन) केवलद्रवीभूत तत्व या सुक्ष्म खेदार चीज नहीं (रहा) बल्कि प्राध्याकीय (जिनकी एकेडेमिक चलनी से हर नया साहित्य झर जाता है) चलनी में ठहरने लायक पदार्थ हो गया था। ''यहाँ आकर वह अनेक अर्थो में नयी कविता को भी पीछे छोड़ता प्रतीत हुआ।''[130]

इसलिए जब नवगीत की यह यात्रा आठवें में प्रवेश करती है तो बहुत ही धीरे-गंभीर गति से यह आगे बढ़ती देखी जाती है। अब उसके सह-यात्रियों की संस्था भी काफी बढ़ चुकी थी और आगे का रास्ता बिलकुल साफ था। इस दशक में भी नवगीत पत्र-पत्रिकाओं में पर्याप्त रूप से चर्चा का विषय बना रहा, पर अब उसके प्रति चर्चा का यह दृष्टिकोण बदल गया था। अब उसके समर्थन और प्रशंसा का स्वर प्रमुख था। इस दशक में कई महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाश में आये। साथ ही अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं ने इसे लेकर विशेषांक निकाले और नवगीतों के अध्ययन-मनन से पता चलेगा कि यह विधा आधुनिकता से उतनी गहराई के साथ सम्बद्ध है, जितनी कि साहित्य की अन्य कोई विधा हो सकती है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते वह कई सकलदीपी मानसिकता वाले लोगों का भ्रम-भंग कर चुका था पुरी तरह अपने वर्तमान से रचपच गयी थी। उसने सिद्ध कर दिया कि ताजापन या व्यक्ति और समाज-जीवन को इनके खट्टे-मीठे अनुभव होते गये जिन्हें साहित्यकार अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम बनाता गया। इस दशक का नवगीत इस दृष्टि से काफी समृद्ध है; औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रगति ने जहाँ एक ओर हमारे ग्रामों और महानगरों के जीवन को सांस्कृतिक टकराहटों की दृष्टि से पूरी तरह तरंगायित

किया है, वहीं दूसरी ओर महानगरों के जीवन को यांत्रिक एवं सन्यासयुक्त बनाया है। हमारे परिवार को या सयुक्त कौटुम्बिक जीवन को इन प्रभावों ने तोड़कर व्यक्ति की भीड़ में अकेला जीने के लिए विवश कर दिया है। आर्थिक दबावों एवं बढ़ती हुई महंगाई के कारण निम्न-मध्यवर्ग के व्यक्ति में ऊब, उदासी और असंतोष की भावनाएँ पैदा हुई हैं। विज्ञान और बुद्धिभाव ने मनुष्य के आस्था के केन्द्रों पर चोट करके उसे धर्म और संस्कृति से दूर अनास्था की ओर ढकेला है। परिणाम यह हुआ कि उसके सामने दिशाहीन भटकाव के अलावा कोई चारा ही नहीं बचा। इसके साथ स्वार्थ एवं छलनायुक्त राजनीति ने अनेक तरह की मूल्यहीनताओं को जन्म देकर उसके जीवन की विडम्बनाओं एवं विसंगतियों का प्रतीक बना दिया है। वह प्रतिक्षण अपने को संवेदनशून्यता असुरक्षा एवं दहशत से घिरा पाता है। जीवन का यह सारा कटू यर्थाथ अत्यंत ही सशक्त रूप में आज के नवगीतों में फूटता पाया जाता है। इस विषैले माहौल की घुटन और उस से निजात पाने के लिए आज का नवगीतकार प्रायः गाँवों के आचंलिक जीवन की ओर लौटता पाया जाता है। वहाँ की अनेक स्मृतियाँ की छाया में वह महानगरीय जीवन के ताप को विस्मृत करने का प्रयास करता है। नवगीतकारों का यह आंचलिक लगाव गीत को विशुद्ध भारतीयता से जोड़ता है। जो उसकी अपनी पहचान है। इस सबके साथ नवगीत ने प्रकृति प्रेम और अन्य रागात्मक अनुभूतियों को भी स्वर दिये हैं, जो परम्परा से नितांत भिन्न हमारे ताजा और टटके, वर्तमान का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यहाँ आकर हम नवगीत और गीत के मूल वृत्त को स्पष्ट कर पाए हैं। गीत का अगला सोपान नवगीत ही रहा है जो अपने कथ्य तथा अपनी प्रस्तुति में भले ही गीत के पारंपरित रूप से अलग रहा है। किन्तु अपनी पहचान और प्रकृति से वह गीत ही है, एक नये संस्करण एवं नई पहचान के साथ।

*

# संदर्भ-सूचि


1. पृ. महर्षि वाल्मीकि प्रथम श्लोक
2. पृ. सुमित्रा नंदन पंत
3. Max Mueller The vedas
4. गीतिकाव्य का उद्‌गम और विकास- डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन पृ. 55
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 11-12
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 13-14
7. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य- डॉ. शिव प्रसाद सिंह, पृ. 314-342
8. गीतिकाव्य का उदगम और विकास- डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, पृ.
9. भ्रमर गीत की भूमिका - आ. रामचन्द्र शुक्ल पृ. 1
10. वही. पृ.3
11. विद्यापति पद्यावली पद-रामवृक्ष बेनीपुरी पृ. 254
12 भूलबीजक-रामखिलावन गोस्वामी, पृ. 112
13. दादूदयालकी बीनी- सं. वेलिडयर प्रेस, इलाहाबाद पृ.
14. नवगीत दशक- डॉ. शंभुनाथ सिंह पृ. 109
15. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ. रामचन्द्र शुक्ल पृ 247
16. मेंहदी और महावर - उमाकान्त मालवीय पृ. 30
17. मेंहदी और महावर - उमाकान्त मालवीय पृ. 30
18. ठंडा लोहा- धर्मवीर भारती पृ. 94
19. वही पृ. 74
20. नवगीत दशक भाग-1, डॉ. शंभुनाथ सिंह पृ.
21. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आ. रामचन्द्र शुक्ल पृ. 247
22. वही पृ. 114
23. वही पृ. 93
24. हिन्दी साहित्य कोष भाग-1, पृ. 290
25. हिन्दी काव्य का विकास- डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय पृ. 139
26. हिन्दी काव्य का विकास- डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय पृ. 139
27. हिन्दी काव्य का विकास- डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय पृ. 139
28. साहित्य लोचन- श्यामसुन्दर दास पृ. 122
29. प्रवासी गीतिकाव्य का विकास- लालधर त्रिपाठी प-. 42
30. भारत भूषण- सागर के सीप पृ. 47
31. पाँछ जोड़ बाँसुरी - चन्द्रदेवसिंहा, सं. केदारनाथसिंह पृ. 212
32. नई कविता और संभावनाएँ - गिरिजाकुमार माथुर पृ. 127
33. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य- गगाधर पाण्डेय पृ. 145
34. वही पृ. 75
35. वही पृ. 65
36. हिन्दी साहित्य कोष-भाग-1पृ. 224
37. नवगीत दशक भाग-1 पृ. 20
38. साहित्यिक निबंध पृ. 70
39. धार पर हम पृ. 15-16

40. धार पर हम - चन्द्रसेन विराट पृ. 32-33
41. धार पर हम - मुकुट सक्सने पृ. 37
42. धार पर हम - सत्यनारायण पृ. 40
43. धार पर हम - इन्दिरा मोहन पृ. 46
44. धार पर हम - अवधबिहारी श्रीवास्तव पृ. 47
45. धार पर हम - मुकुट सक्सेना पृ. 51
46. वही. पृ. 57
47. वही. पृ. 58
48. वही पृ. 58
49. धर्मयुग- हरीश निगम, पृ.
50. साठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य और प्रयोग, डॉ. क्रांतिलाधी पृ. 466
51. साठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य और प्रयोग, डॉ. क्रांतिलाधी पृ. 467
52. साठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य और प्रयोग, डॉ. क्रांतिलाधी पृ. 468
53. साठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य और प्रयोग, डॉ. क्रांतिलाधी पृ. 469
54. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड पृ. 70
55. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड पृ. 71
56. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड पृ. 80
57. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड़ पृ. 81
58. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड़ पृ. 89
59. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड पृ. 90
60. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड़ पृ. 93
61. वही पृ. 95
62. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. रामावतार व्यागी पृ. 101
63. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. उदयभानु हंस पृ. 107
64. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मुकुट बिहारी पृ. 108
65. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. कुमार रवीन्द्र पृ. 110
66. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. ज्ञानवती सक्सेना पृ. 109
67. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. रामनाथ अवस्थी पृ. 121
68. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. वीरेन्द्र मिश्र पृ. 123
69. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. जगतप्रकाश चतुर्वेदी पृ. 124
70. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. स्नेहलता स्नेह पृ. 124
71. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया पृ. 129
72. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. डॉ. विद्यानंदन राजीव पृ. 130
73. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. उमाकान्त मालवीय पृ. 132
74. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र पृ. 133
75. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. सोमठाकुर पृ. 134
76. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. रवीन्द्र जीमर पृ. 135
77. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. नईम पृ.140
78. बीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. सत्यनारायण पृ. 145
79. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - मधुकर गौड़, पृ. 95
80. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत- मधुकर गौड पृ. 91

81. वीसवी सदी के श्रेष्ठ गीत- सं. मधुकर गौड़ पृ. 101
82. नवगीत अर्द्धशती- शंभूनाथ सिंह पृ.147
83. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत- भरत व्यास पृ. 117
84. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत- बलवीरसिंह पृ. 113
85. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत- नंद चुतर्वेदी पृ. 118
86. वही पृ. 127
87. वही पृ. 128
88. नीरज की पाती- नीरज पृ. 102
89. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत- मुकुट बिहारी सरोज पृ. 205
90. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत- ज्ञानवती सक्सेना पृ. 201
91. वही पृ. 207
92. लेखनी बेला पृ. 65
93. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - जगत प्रसाद चतुवेदी पृ. 202
94. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - भारत भूषण पृ. 220
95. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - स्नेहलता सनेह पृ. 221
96. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - रमानाथ अवस्थी पृ. 221
97. बीसवीं सदी के श्रेष्ठगीत - रमानाथ अवस्थी पृ.223
98. हिन्दी के श्रृंगार गीत - पृ. 107
99. हिन्दी के श्रृंगार गीत- पृ. 230
100. हिन्दी के श्रृंगार गीत- राजेन्द्र प्रसाद सिंह पृ. 231
101. हिन्दी के श्रृंगार गीत- शंभुनाथ सिंह पृ.334
102. हिन्दी के श्रृंगार गीत- पृ. 93
103. हिन्दी के श्रृंगार गीत- माहेश्वर तिवारी पृ.231
104. वही पृ. 232
105. हिन्दी के श्रृंगार गीत- अनूप विशेष, पृ. 232
106. हिन्दी के श्रृंगार गीत- राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. 233
107. आनेवाले दिनकी बात कहाँ - पृ.234
108. धूम्रवन से लौट आई लालपरिया - विष्णु विराट पृ. 71
109. वही पृ. 72
110. नवगीत दशक -भाग-1 नईम, पृ. 17
111. नवगीत दशक -भाग-1 , धर्मवीर भारती. पृ. 19
112. नवगीत दशक -भाग-1 , वीरेन्द्र मिश्र पृ. 21
113. भव्यभारती अंक-8, पृ. 4
114. नवगीत दशक -भाग-1, देवेन्द्र शर्मा इन्द्र पृ. 27
115. नवगीत दशक -भाग-1, डॉ. बंशीधर पृ. 28
116. नवगीत दशक -भाग-1, डॉ. रामविलाश शर्मा, पृ. 29
117. वही पृ. 22
118. नवगीत दशक -भाग-1, डॉ. रामविलाश शर्मा, पृ.
119. वही पृ. 34
120. वही पृ. 37
121. पृ.

122. सुमित्रानंदन मंतव्य, नरेन्द्र शर्मा, पृ.30
123. सुमित्रानंदन मंतव्य,दिनकर पृ.30
124. सुमित्रानंदन मंतव्य,डॉ. रामदरश मिश्र, पृ.31
125. सुमित्रानंदन मंतव्य, डॉ. शंभुनाथ सिंह, पृ.32
126. सुमित्रानंदन मंतव्य,श्री राजेन्द्र गौतम, पृ.32
127. सुमित्रानंदन मंतव्य,मुक्ति बोध, पृ. 35